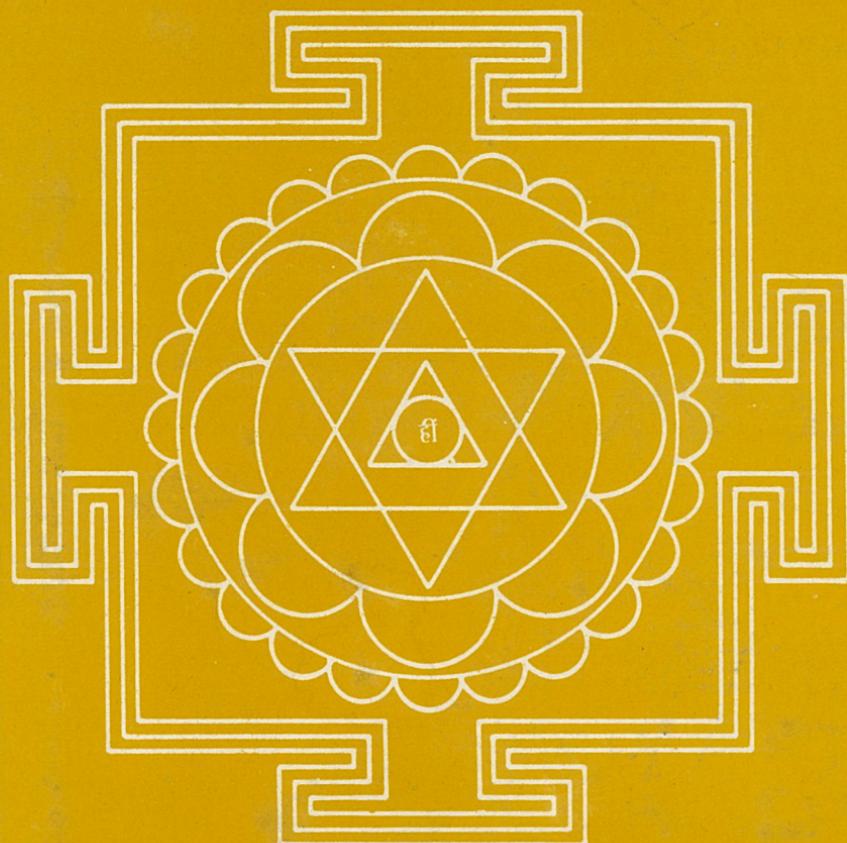


श्री तंत्रद्वृग्भिरप्तशती

(सप्तशत्या गृहवीजनामावलि)



डॉ. रामचन्द्र पुरी
वेदान्ताचार्य



COLLECTION OF VARIOUS
--> HINDUISM SCRIPTURES
--> HINDU COMICS
--> AYURVEDA
--> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
--> HINDUISM SCRIPTURES
--> HINDU COMICS
--> AYURVEDA
--> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

॥ श्रीः ॥

ब्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

130

श्रीतत्त्वदुर्गासप्तशती

(सप्तशत्या गुह्यबीजनामावलि)

लेखक

डॉ. रामचन्द्र पुरी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती (सप्तशत्या गुह्यबीजनामावलि)

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली-110007

दूरभाष : 23856391; 41530902

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 1998

मूल्य 200.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069

वाराणसी-221001

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129

वाराणसी-221001

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली-110002

इट न मग

शारदीय नवरात्रों में 'तंत्रदुर्गासप्तशती' नामक पुस्तक की एक फोटो स्टेट प्रति प्रिय सुरेश आनन्द ने लाकर दी। यह प्रति साफ न थी, बहुत से बीजाक्षरों की मात्राएं अस्पष्ट थीं जैसे, हाँ, हीं और हौं आदि में कई जगह यह निश्चय कर पाना सरल न था कि वास्तव में यहाँ कौन सा बीजाक्षर है। पुस्तक किन्हीं पं. शिवदत्त शास्त्री द्वारा छपाई गई थी। इसमें 'दुर्गासप्तशती' के सात सौ श्लोक बीजमंत्रों के रूप में थे। श्री शास्त्री ने अपनी प्रस्तावना में लिखा था कि उन्होंने संवत् 2000 के आश्विन मास में उक्त 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बीजमंत्र विन्ध्याचल में साधनारत एक महात्माजी की हस्तलिखित पुस्तिका से उतारे हैं। शास्त्री जी के अनुसार प्रचलित दुर्गासप्तशती के श्लोकों का परिणत बीजरूप ही 'तंत्रदुर्गासप्तशती' है।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बारे में मुझे कुछ भी ज्ञात न था। यह अद्भुत और अश्रुतपूर्व थी। मैंने पं. गोपीनाथ कविराज द्वारा संकलित 'तांत्रिक साहित्य' तथा तंत्र एवं शाक्त-साधना विषयक साहित्य में इसकी खोज की, कई साधकों, विद्वानों, हरिद्वार कुंभ में आये साधु-सन्यासियों, महामंडले श्वरों आदि से साक्षात् और दूरभाष से संपर्क कर 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बारे में जानकारी चाही, लेकिन, सबका केवल एक ही जबाब था 'इसके बारे में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं।'

फिर भी, शाक्त-उपासकों के कौल और समयाचार में प्रचलित अद्भुत और अकल्पनीय बीजमंत्रों से संपन्न 'तंत्रदुर्गासप्तशती' को सम्पादित कर उसे सही-सही रूप में प्रकाशित करने की आकांक्षा

जगी। लेकिन साधना संबन्धी कोई ग्रन्थ यदि मान्य विद्वानों और साधकों के लिए 'श्रवणायापि बहुभि यों न लब्धः' की स्थिति में हो, तो उसका प्रकाशन निरर्थक होगा, ऐसा भी सोचता रहा। पुस्तक की प्रामाणिकता के बारे में भी मुझे संदेह था।

हरिद्वार के महाकुंभ के अवसर पर कई विद्वानों, साधकों, शक्तिपीठाधीश्वरों तथा महामण्डलेश्वर सन्यासि—विद्वद्वर्ग ने परामर्श दिया कि मैं संन्यासी जगत् के सर्वोच्च विद्वान् और भगवती श्री के उपासक स्वामी काशिकानन्द जी से मिल लूँ और यदि वे इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मान लें, तो निःसंदेह यह प्रामाणिक है, भले ही इसका उल्लेख कहीं न मिल रहा हो।

(५८) पूज्य स्वामी श्री काशिकानन्द जी से सूरत गिरि बंगले में मिला। उन्होंने पुस्तक देखी और इसे प्रामाणिक एवं परंपरित बताया। उन्होंने इसे प्रकाशित करने का परामर्श भी दिया।

(५९) इन साधकों और विद्वानों के समर्थन से उत्साह मिला। सम्पादन (बीजाक्षरों के सही रूप के निर्धारण, संशोधन आदि) का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सतत अध्यवसाय से अवगत हुआ कि 'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बीजों का संयोजन बड़े वैज्ञानिक रूप से हुआ है। उदाहरण के लिए दुर्गासप्तशती के 'ऋषिरुवाच, राजोवाच, वैश्य उवाच, मार्कण्डेय उवाच, देव्युवाच, देवा ऊचुः आदि श्लोकों के बीजाक्षर—क्रमशः श्रौं, रौं, वैं, श्रीं, हीं, हसौं आदि प्रायः सर्वत्र एक रूप ही हैं।

कुछेक अपवाद स्थलों पर जहां ऐसा नहीं था, वहां ये बीज इन श्लोकों के सन्निकट आगे या पीछे मिले, जिन्हें यथास्थान रखना जरूरी था। कहीं—कहीं वर्तमान में प्रचलित दुर्गासप्तशती के श्लोकों की संख्या में संशोधन कर देने पर बीजमंत्रों की स्थिति सही हो जाती है। मैंने ऐसा संशोधन किया है, और इसके लिए मुझे प्रामाणिक आधार भी मिल गये हैं। स्पष्टतः गीताप्रेस और अन्यत्र प्रकाशित एवं हस्तलिखित प्रतियों में पर्याप्त पाठान्तर एवं श्लोकसंख्यान्तर हैं। ऐसी प्रतियां मेरे पास हैं।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के बीजमंत्रों के अध्ययन—मनन के सन्दर्भ में अपने प्राचीन साहित्य, विशेषरूप से 'औपनिषदिक साहित्य' के

पुनरावलोकन की भी आवश्यकता महसूस हुई। विशाल उपनिषत् साहित्य में बहुत से उपनिषत् तंत्र—योग और शाक्तादि उपासनाओं के प्रतिपादक हैं और इनमें बीजाक्षरों और बीजमंत्रों का विस्तृत विवरण—विवेचन है।

किन्तु, आचार्य भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य ने जिन एकादश उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं, उनका अध्ययन केवल दार्शनिक एवं वैचारिक स्तर पर किया जाता रहा है। श्वेताश्वतर उपनिषद् को छोड़ कर अन्य उपनिषदों के साधनापक्ष की उपेक्षा ही की गई है, और आज भी की जा रही है।

‘तंत्रदुर्गासप्तशती’ के अध्ययन—मनन के समय मेरा ध्यान उपनिषदों, (विशेषरूप से कठोपनिषद्), के साधनापक्ष की ओर आकर्षित हुआ। मुझे लगा यम—नचिकेता संवाद में भगवती महामाया की साधना—सरणि का विवेचन है। इस उपनिषद् की श्रुतियों में मुझे स्थान—स्थान पर भगवती महामाया के ‘बीजनाम’ झांकते मिले। मुझे ऐसा भी महसूस हुआ कि ‘तंत्रदुर्गासप्तशती’ दुर्गासप्तशती का बीजरूपान्तरण नहीं, बल्कि ‘दुर्गासप्तशती’ बीजरूप ‘तंत्रदुर्गासप्तशती’ का ही अंकुरित—पल्लवित रूप है, वटबीज से विकसित वटवृक्ष की भाँति। वास्तव में, मूलरूप भगवती के बीजनाम हैं, और दुर्गासप्तशती का समस्त कथानक उसका विकसित रूप। आख्यायिका प्ररोचना या सुखावबोधकार्थक है। मैंने तंत्रदुर्गासप्तशती के हीं, कर्लीं, श्रीं, ऐं तथा स्त्रीं इन पांच बीजनामों के विवेचन, के प्रसंग में अपनी इस धारणा के लिए पुष्ट प्रमाण दिये हैं।

पुस्तक अन्तिम रूप से टंकित हो जाने के बाद प्रख्यात तपस्वी एवं ज्योतिर्विंद पं. गिरीशचन्द्र जी बड़ोनी से दुर्गासप्तशती की एक प्राचीन प्रति (खंडित) उपलब्ध हुई जिसमें प्रत्येक श्लोक के पूर्व उसके बीजमंत्र का उल्लेख है। इस पुस्तक की प्राप्ति से ‘तंत्रदुर्गासप्तशती’ के बारे में मेरे मन में घुमड़ रहे प्रमाणिकता/अप्रमाणिकता विषयक संशय—मेघ छट गये।

पं. गिरीशचन्द्र वाली प्रति प्राप्त होने पर पं. शिवदत्त शास्त्री की प्रति की फोटोस्टेट की कमियां दूर करने में बहुत मदद मिली, साथ ही

दोनों प्रतियों के बीजमंत्रों का मिलान करके पाठान्तरों के उल्लेख का अवसर भी प्राप्त हुआ। मैंने पं. शिवदत्त वाली प्रति को 'क पुस्तक' तथा पं. गिरीशचन्द्र' की पुस्तक को 'ख पुस्तक' नाम देकर यथोचित पाठसंशोधन और पाठभेदों का उल्लेख करके पुस्तक को यथाशक्ति शुद्ध और प्रामाणिक रूप देने का प्रयास किया।

प्रकाशन के लिए जब पुस्तक तैयार कर ली गई तो प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् श्री भैरव प्रसाद 'दीप' से 'सप्तशतीमंत्र' नामक एक प्राचीन लघु पुस्तक की फोटोस्टेट प्रति उपलब्ध हुई, जिसमें तंत्रदुर्गासप्तशती के बीजमंत्र हैं। इस पुस्तक का यत्किंचित् उपयोग फुटनोट में 'ग पुस्तक' के संकेत के साथ मैंने किया है।

'तंत्रदुर्गासप्तशती' के कम्प्यूटर टंकण का कार्य अन्तिम रूप से समाप्त हो जाने पर मेरे सौभाग्य से द्वारिका एवं ज्योतिष्ठीठ के शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द जी हरिद्वार आये तो मैंने यह पुस्तक उन्हें दिखाई। पूज्य श्री शंकराचार्य जी के विचार पाठक इस पुस्तक में 'आशीर्वचन' के रूप में देख सकते हैं।

इसी स्थल पर आभार प्रदर्शित करना भी आवश्यक है। आभार प्रदर्शन केवल 'प्रदर्शन' नहीं है, मेरे लिए। यह महान् गुरुओं, साधियों और सहयोगियों के प्रति मेरी विनत कृतज्ञता है। क्योंकि इस पुस्तक में जो कुछ है, वह इन्हीं सबका है, मेरा कुछ नहीं—'इदं न मम'।

इसी भावना के साथ मैं अपने महान् गुरुद्वय परम पूज्य ब्रह्मलीन स्वामी श्री स्वयंज्योति तीर्थ जी (ज्ञानसाधन आश्रम, भरुच) तथा शक्तिपात दीक्षागुरु प्रातः स्मरणीय महान् योगी ब्रह्मलीन स्वामी श्री विष्णु तीर्थ जी (देवास) की अहैतुकी कृपा के लिये कृतज्ञ हूं। इन महान् गुरुजनों के आशीष के बिना मेरा समस्त शास्त्रीय ज्ञान अर्थ की अनुभूति से रहित मात्र 'शब्द' ही रह जाता।

मैं आभारी पूज्यपाद जगत् गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती का भी हूं, जिन्होंने पुस्तक की आशीर्वादात्मक प्रस्तावना लिख कर मुझे अनुगृहीत किया। मैं आभारी हूं डॉ. प्रो. विष्णुदत्त राकेश का पुस्तक की 'प्ररोचना' और उनकी संशयोच्छेदिप्रेरणा के लिए।

श्री देव स्वामी (मंगल आश्रम कनखल) और श्री कल्याणानन्द

सरस्वती (मानव कल्याण आश्रम कनखल) की सारस्वत कृपा के लिए भी मैं आभारी हूँ, जिसके बिना आचार्य भगवत्पाद का आशीर्वाद मिलना संभव न था।

आनन्द टेंट हाउस के स्वामी श्री सुरेश आनन्द का आभारी हूँ। इसलिए कि वे ही भगवती की कृपाधारा (तंत्रदुर्गासप्तशती) मुझ तक लाने के माध्यम बने।

भगवती दुर्गा डॉ. मधुसूदन शर्मा के माध्यम से मुझे निरन्तर प्रेरित—उत्साहित करती रही हैं। पुस्तक की प्रामाणिकता के बारे में बार—बार हृदय को कुरेद रहे संशय कीट को ध्वस्त करने के लिये भगवती ने डॉ. शर्मा के द्वारा पं. गिरीश चन्द्र, को घर पर ला खड़ा कर किया। डॉ. मधुसूदन शर्मा की सतत—सक्रिय प्रेरणा के बिना पुस्तक का प्रकाशन संभव न हो पाता। मैं डॉ. शर्मा का हृदय से आभारी हूँ।

इसी स्थल पर मैं श्री ईश्वर दत्त जी के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके कारण 'प्रवर्तितः दीप इव प्रदीपात्' की परम्परा सरणि से पं. गिरीशचन्द्र से संपर्क हुआ। डॉ. टी. आर. सिंह के सहयोग के लिये भी मैं कृतज्ञ हूँ।

'बिग बाईट कम्प्यूटर्स' के नीरज रुहेला एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बृजमोहनी के प्रति आभारी हूँ, जो अनेक दबावों के बावजूद 'तंत्रदुर्गासप्तशती' का टंकण करके पुस्तक को शुद्ध रूप में लाने के लिये श्रेय के भागी हैं।

भगवती महागौरी की आनन्द—लहरी की लघु सिंहरन, (जिसके बिना यह जन 'अर्धबृगल' ही रह जाता) अपनी अर्धांगिनी मीरा के प्रति आभार व्यक्त करना केवल औपचारिकता ही होगी। वास्तव में, इस पुस्तक के सम्पादन का बहुत सारा श्रेय मीरा को ही जाता है, मैं तो निमित्त भर रहा हूँ।

रामचन्द्र पुरी

आशीर्वचनम्

हमारे वैदिक साहित्य में तीन कांड हैं, कर्म—कांड, उपासना—कांड और ज्ञान—कांड। कर्म—कांड दो भागों में विभाजित है। जैसे कुछ कर्म कल्प—सूत्रों के आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों में विधान के अनुसार वैदिक देवता और द्रव्य के साथ विस्तार से वर्णित हैं, उसी प्रकार वेदानुकूल तंत्रों के आधार पर विविध यज्ञों के रूप में भी उनका विस्तार किया गया है। उनके द्रव्य और देवता तंत्रानुसारी हैं।

तंत्र में तीन विषय मुख्य माने जाते हैं—यंत्र, मंत्र और तंत्र। आवरण सहित देवता की उपासना का आलम्बन यंत्र, देवता का शब्दमय स्वरूप मंत्र और उपासना का विधान तंत्र कहलाता है।

वैदिक सनातन धर्म के प्रतिपादक ग्रंथ निगम और आगम हैं। अनादि अपौरुषेय शब्दराशि को निगम कहा जाता है तथा ईश्वर के द्वारा उपदिष्ट विधानों को तंत्र या आगम कहा जाता है। लोक में भी तंत्र शब्द का प्रयोग शासन के अर्थ में ही होता है, जैसे राजतंत्र, लोकतंत्र आदि। शिवप्रोक्त शासन का नाम ही तंत्र है। तंत्र का वाड्मय अत्यन्त विस्तृत है।

मंत्रों में बीजाक्षरों का प्राधान्य होता है। अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त सभी अक्षर मंत्र बन जाते हैं। यहाँ तक कि अ से लेकर अः तक स्वराक्षरों के मिश्रण से उन वर्णों के बीजाक्षरों के अनेक रूप बनते हैं। उनके उच्चारण से हमारे प्राणों में जो कंपन होता है, उससे अद्भुत आध्यात्मिक ऊर्जा का सृजन होता है।

उपासना भी वैदिक तथा तांत्रिक दो भागों में विभक्त है। सनातन धर्म में जो भी उपासना चल रही है, वे मिश्र हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने एकादश स्कन्ध में ‘वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयं व्रतधारणम्’

कह कर तंत्रों का समर्थन किया है। मन्दिरों में मूर्तियों के प्राण-प्रतिष्ठा के मंत्र तंत्रप्रोक्त ही हैं।

'देवो भूत्वा देवान् यजेत्' के सिद्धान्तानुसार उपासक भूसिद्धि, भूतसिद्धि तथा विविध न्यासों के द्वारा, जिनमें मातृका-न्यास, बहिश्चक्र-न्यास, अन्तश्चक्र-न्यास, सृष्टि-न्यास, रिथति-न्यास, संहार-न्यास, षोढा-न्यास, तथा महाषोढा-न्यास मुख्य हैं, उपासना में प्रवृत्त होकर आत्म संस्कार करता है। इसी प्रकार पात्रासादन के द्वारा पूजाद्रव्यों के संस्कार का विधान है।

पात्रों में वर्द्धनीकलश, सामान्याधर्य, विशेषाधर्य, गुरुपात्र तथा आत्मपात्र का संस्कार करके अन्तर्याग, इष्टदेवता का ध्यान, आवाहन, चतुष्पष्ठि उपचार पूजा, आवारण-पूजा, मंत्रजप तथा स्तोत्रपाठ का क्रमशः अनुष्ठान किया जाता है। तदनन्तर बीजाक्षरों सहित स्तोत्रपाठ किया जाता है। स्तोत्रपाठ सीधा-सीधा भी होता है और बीजाक्षरों सहित भी होता है।

दुर्गासप्तशती का बीजात्मक रूप तथा प्रचलित दुर्गासप्तशती का बीजाक्षरों सहित स्वरूप जो उपासकों में परम्परा से अनुष्ठित होता रहा है और जो गुरुमुखैक संवेद्य रहा है तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों का अत्यन्त परिश्रम द्वारा अन्वेषण और तंत्रात्मक उपासना पद्धति के अत्यन्त दुलभ और गोपनीय विषयों को प्रकाशित करके डॉ. रामचन्द्र पुरी ने तंत्र के साधकों का उपकार किया है, जिसके लिए वे आशीर्वाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से साधक प्रोत्साहित हों और आध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न बनें, हमारी ऐसी शुभकामना है।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

शंकराचार्य : द्वारिका एवं ज्योतिष्ठीठ

प्ररोचना

श्री दुर्ग सप्तशती शारूह साधकों का हृदय है। भोग और मोक्ष की सहज प्राप्ति के लिए शताब्दियों से साधक इस ग्रन्थरत्न का उपयोग करते रहे हैं। श्रुति, स्मृति तथा आगम प्रस्थान में भी सप्तशती का समान महत्व है, अतः समयाचारी तथा कौलाचार सम्पन्न साधक समान भाव से सप्तशती को साधना के लिए स्वतः प्रमाण मानकर श्रीदुर्गार्चन में प्रवृत्त होते रहे हैं।

दुर्ग नाम बड़ा महिमाशाली है। अर्थवर्शीष श्रुति में 'दुर्गा देवीं शरणं प्रपद्यामहे' इसीलिए कहा गया है। सुद्रयामल तंत्रानुसार तो इसी पवित्र नाम का जप शिव भी करते हैं, वह पंचनन् इसी नाम ज्ञापक रूप के कारण कहे भी जाते हैं—

दुर्गानाम जपो यस्य किं तस्य कथयामि ते,
अहं पञ्चाननः कान्ते तज्जापादेव सुकते।

भगवान् शिव के पाँचमुखों के नाम क्रमशः सद्बोजात, वामदेव अधोर, तत्पुरुष तथा ईशान हैं। ये मुख मंत्रमय हैं, इन्हीं से शैवागमों तथा शारूहगमों का उपदेश और विस्तार हुआ है। इन्हीं एव्यमुखों से एव्याम्भायों का उद्भव हुआ। शिव को यह शक्ति दुर्ग के नाम जप के कारण ही मिली। 'गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा' कहा भी गया है।

शारूह उपासना और शक्तितत्त्व का निरूपण श्रुतियों में भी हुआ है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में शक्तिकारणवाद का निरूपण हुआ है। आचार्य श्रेष्ठ श्री शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में स्पष्ट कहा था कि शक्तियुक्त ब्रह्म ही कर्य करने में समर्थ होता है, शक्ति के अभाव में वह कुछ भी नहीं कर सकता—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

इस प्रकार सम्पूर्ण दृश्य—अदृश्य शक्तिमय दिखाई इड़ता है। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' श्रुति की व्याख्या करते हुए शारूहाचार्य श्री जगन्नाथ तर्कपञ्चानन ने

ब्रह्मसूत्र भाष्य में पराशक्ति का प्रसार सम्पूर्ण विश्व में मरना है। वह 'ईशावास्यम्' का अर्थ 'ईशाया आवास्यम्' अर्थात् 'पराशक्तिरूप परब्रह्म का आवास है यह सम्पूर्ण संसार', ऐसा करते हैं। अतः जो कुछ भी जगत् में उपलब्ध है, उसका उपयोग त्यागपूर्वक करनेवाला, उसे प्रसादरूप में ग्रहण करने वाला साधक ही परम्बा की कृपा प्राप्त करता है। कीलक में इसी भाव को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो साधक शक्ति दीक्षा लेकर कृष्णपूजा की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को एकत्रित होकर भगवती की सेवा में स्व अर्जित—संचित सर्वस्व समर्पित कर देता है तथा फिर उससे अधिकार हटा प्रसादरूप से भोगार्थ ग्रहण करता है, उसी पर भगवती प्रसन्न होती है, अन्यथा उनकी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती—

कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः,

ददाति प्रतिगृहणाति नान्यथैषा प्रसीदति।

सप्तशती के तीन चरित्रों प्रथम, मध्यम तथा उत्तम में क्रमशः महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की लीलाओं का निरूपण किया गया है। वेद में इन्हें अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका नामों से सम्बोधित किया गया है। सप्तशती के प्रत्येक अध्याय के अन्त में यजुर्वेद (२३/१५) की इस श्रुति से आहुति देने का विधान है—

अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कशचन।

सप्तस्त्यशबकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।

उब्बट तथा महीधर ने इस मंत्र का विनियोग अश्वमेध प्रकरण में करते हुए जो अर्थ किया है, वह शक्तिभगवना से मेल नहीं खाता। मेरी दृष्टि में अम्बा भू स्थानीय अग्नितत्व की वाचिका हैं, अम्बिका भुवः स्थानीय वायुतत्व की वाचिका हैं तथा अम्बालिका स्वः स्थानीय सूर्यतत्व की वाचिका हैं। प्रथम ऋग्वेद स्वरूपिणी, द्वितीय यजुर्वेद स्वरूपिणी तथा तृतीय सामवेद स्वरूपिणी देवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। सप्तशती के चतुर्थ अध्याय में देवताओं ने ग्रार्थना करते हुए कहा भी है—

शब्दात्मिका सुविमलगर्जुणां निधान—मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च सामाम्।

देवी त्रयी भगवती भव भावनाय, वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।

अर्थात् आप शब्द रूप हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथ के

मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधार आए हैं। आप देवी त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्यों से युक्त) हैं। इस विश्व की उत्पत्ति तथा पालन के लिए आप वार्ता के रूप में प्रकट हुई हैं तथा आप सम्पूर्ण जगत् की पीड़ा को नष्ट कर देती हैं। यही कारण है कि सप्तशती के प्रथम चरित्र के विनियोग में अग्नितत्त्व, मध्यम चरित्र के विनियोग में वायुतत्त्व तथा उत्तम चरित्र के विनियोग में सूर्यतत्त्व की चर्चा क्लमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के संदर्भ से की गई है। यह समझ लेने के बाद उक्त मंत्र का अर्थ होगा—

हे भूः स्थानीय प्राणग्निरूपे अम्बे! हे भुवः स्थानीयापानमतारिश्वरूपिणि अम्बिके! हे स्वः स्थानीयव्यानादित्यरूपिणि अम्बालिके! अहं तवाक्षयकृपां लब्धुं प्रणतोऽस्मि। भवच्चरणेषु सर्वात्मना समर्पितं माम् (मा) कोऽपि कर्दयः कुत्सितमना सांसारिकः (श्वकः) मोक्षमार्गात् पृथक् कर्तुं न पारयति (न नयति)। यथा अनित्यसंसारविज्ञातः परमात्मनिष्ठः मुमुक्षुः पुरुषः (न श्वः अश्वः, अश्वः एव अश्वकः अत्मसाक्षात्करसम्पन्नः अद्वैतनिष्ठः) कल्याणकारिणीम् (सुभद्रिकाम) मणिद्वीपनिवासिनीम् (काम्पीलवासिनीम) अथवा चित्रविचित्रदुकूलोपेततम् मोक्षाधिष्ठात्रीम् देवीम् अतिशयेन प्राप्नोति (सस्सित), तथैव अहमपि मातुर्भत्तोऽस्मि, फलस्वरूपेण देव्यनुग्रहं शीघ्रं पश्यामि, करुणामयि अम्बे मयि दयां कुरु। तवाशीर्वादेन, अक्षयानुग्रहेण सर्वं सिद्धं भविष्यति, यतोहि अध्यात्मतत्त्वसाक्षात्करलब्ध्ये तव कृपैव हेतुः— ‘यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्’, ‘सा ब्रह्मेति होवाच’ इति श्रुते।

वैकृतिक रहस्य में ‘उन्हें चित्रमाल्याम्बर विभूषणा तथा श्रुति में काम्पीलवासिनी कहा गया है। डॉ. सूर्यकन्त जी ने वैदिक कोश में काम्पीलवासिनी का अर्थ चित्रविचित्र दुकूल धारण करने वाली किया है। ‘नागेन्द्र प्रयाण तंत्र’ के ‘भवनी भैरवी भीमा’ भद्रकाली सुभद्रिका’ वचन में उन्हें सुभद्रिका भी कहा गया है। अतः कहा जा सकता है कि सुभद्रिका नाम भी वेदोक्त तथा तत्त्वोक्त दोनों है।

कहना यह कि सप्तशती का विन्यास वेदोक्त तथा आगमोक्त परम्पराओं को ध्यान में रख कर किया गया है। उक्त मंत्र की भवना पूर्णतया शक्तिवादी है तथा आगमों में इसी का विस्तार हुआ है।

सप्तशती का बीजाक्षरों में रूपान्तरण भी आगमिक चिन्तन के कारण ही संभव हो सका। मध्यकाल में नारोश जैसे वैयाकरण आचार्य ने भी सप्तशती की व्याख्या की। इधर दुर्गासप्तशती परं प्रतीकात्मक दृष्टि से भी विचार किया जाने लगा है। तर्कपञ्चानन् जी ने तो 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' करते हुए सप्तशती को प्रमाणरूप से उद्धृत भी किया है।

सप्तशती के श्लोकों के समानान्तर बीजमंत्रात्मक पाठ की परम्परा भी साधकों में प्रचलित है। लगभग चाँतीस वर्ष पूर्व मिर्जापुर विन्ध्यवासिनी की यात्रा में मुझे एक पण्डित मिले थे, जो बीजमंत्रात्मक सप्तशती का पाठ तथा हवन करते थे। मैंने उसके बाद यह प्रयोग कहीं नहीं देखा और न ही कोई साधक इस धारा का मुझे मिला।

अभी कुछ मास पूर्व डॉ. रामचन्द्र पुरी संपत्नीक मेरे आवास पर आए। उन्होंने मुझे जब बीजमंत्रात्मक सप्तशती दिखाई तो मेरे आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। परम्परा की प्रेरणा से उन्हें यह कृति मिली और बड़ी विद्वता, श्रम तथा निष्ठा से उन्होंने इस कृति का सारंगेपांग सम्पादन कर डाला। साधकों के कल्याणार्थ उनकी यह कृति प्रकाशित भी हो रही है, यह बात और भी सुखकारी है। औपनिषदिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने शास्त्रदर्शन की जित बारीकियों पर प्रकाश डाला है, उससे शक्तिकरणवाद का वैदिक आधार और भी पुष्ट हो गया है।

अन्त में, मैं डॉ. पुरी को इस यज्ञानुष्ठान के लिए आशीर्वाद तथा बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस दिशा में वह आगे भी कुछ और करते रहेंगे।

आचार्य डॉ. विष्णुदत्त राकेश
ईशान, भगवन्त पुरम्, कनकल (हरिद्वार)

दूरभाष - ४१४९९४

तम आसीत् तमसा गूढग्रे ..

भगवती दुर्गा महामाया सृष्टि की बीज हैं, वह जगत् की आदि कारण हैं, इस तथ्य का साक्षात्कार वैदिक ऋषियों ने किया था। ऋग्वेद में सृष्टि का रहस्य उद्घाटित करने वाला एक सूक्त है—‘नासदीयसूक्त’। इस सूक्त की ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि ने कहा था—

‘सृष्टि के आदि में न असत् था और न सत्
तब न मृत्यु थी और ना ही अमृत,
न रात और न दिन।

पर कुछ न कुछ गहन दुविज्ञेय जरूर था। क्या था वह? कोई आवरण, कुहरा या अन्धकार? कुछ कहा नहीं जा सकता।

हाँ, था कुछ प्राणवान्, किन्तु बिना वायु के ही। वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित अकेला ही था। वास्तव में, उसके अलावा अन्य कुछ नहीं था।

पर वह क्या था? वास्तव में, सबसे पहले ‘तमस्’ था। यह सब कुछ तम ही तो था, अप्रकेत नामरूपरहित केवल तमस्। वह तमस् तमस् से ही आवृत था।

1. नासदासी न्तो सदासीत्तदार्नी नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म न्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।
न मृत्युरासीदमृतं न तहिं न रात्र्या अहन आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्मा द्वान्यन्न परः किंचनास।
तम आसीत् तमसा गूढग्रेऽप्रकेतं सलिलं सुर्वमा इदम्।

१०/१२९/१-३०

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त द्वारा नामरूपादिरहित जिस 'अप्रकेत तमस्' की ओर संकेत किया गया है, वह वही तामसी आदि शक्ति है, जिसने विष्णु अर्थात् विराट् विश्व को आच्छादित कर रखा था और जिसकी स्तुति ब्रह्मा ने की थी। वैदिक और तांत्रिक रात्रिसूक्त उसी शक्ति की महिमा के प्रतिपादक हैं।^२

समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त परशिव की यही आवरणात्मिका शक्ति वेदान्त प्रतिपादित माया है। इस मायाशक्ति का वाचक नाम या प्रणव 'हीं' है। सृष्टि के लय काल में यही माया शक्ति 'हीं' समस्त सृष्टि के बीज को अपनी कुक्षि में पालती हुई इसे सुरक्षित रखती है। इसीलिए तांत्रिक ग्रन्थों में इसे प्रतिपालिका (हींकारी प्रतिपालिका) कहा गया है। यही महामाया जब सृष्टि की कामना करती है, तो इसका अभिधान या वाचक बीज 'कलीं' होता है (कलींकारी कामरूपिण्यै) और सृष्टि रचना में प्रवृत्त यही महाशक्ति 'ऐं' बीज से वाच्य (ऐंकारी सृष्टिरूपिण्यै) होती है।^३

इस तरह महामाया स्वयं सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त होती है, अपना पालन करती हुई स्वयं में स्थित रहती है और अन्त में स्वयं को स्वयं से आवृत करके अप्रकेत—नामरूपादिरहित—स्थित रहती है।

'तत्रं दुर्गासप्तशती' के समस्त बीजमंत्र महाशक्ति दुर्गा के ऐं, हीं और कलीं इन तीन महाबीजों के ही विस्तार हैं और 'दुर्गासप्तशती' के सात सौ मंत्रश्लोक इन्हीं बीजों के विविध श्लोकद्रुम। इन्हीं श्लोकद्रुमों से भगवती महामाया की महती कथा अरण्यानी की सृष्टि हुई है। 'तत्रंदुर्गासप्तशती' की इस भूमिका में इसी गहन—गभीर अरण्यानी में बिलमने का प्रयास भर किया गया है। अरण्यानी का ओर—छोर तो नहीं, पर शीतल छाया इस जन को भरपूर मिली है।

२. दुर्गासप्तशती के वैदिक तथा तांत्रिक रात्रिसूक्त द्रष्टव्य।

३. कुंजिकास्तोत्रम्।

स य एषोऽणिमा

आरुणि ने श्वेतकेतु से वट का एक फल मंगाया और कहा— ‘इसे तोड़ो ।’

उसने तोड़ा ।

आरुणि ने उससे पूछा— क्या है इसमें ?

भगवन्, छोटे— छोटे बीज ।

इनमें से एक को तोड़ो ।

तोड़ दिया भगवन् ।

इसमें क्या है ?

‘कुछ नहीं’ श्वेतकेतु ने कहा ।

‘इस अणु बीज में तुम यह जो ‘कुछ नहीं’ देख रहे हो, इसी ‘कुछ नहीं’ में एक विशाल वट वृक्ष छिपा हुआ है ।’ यह जो अदृश्य ‘अणिमा’ है, इसी में सारा जगत् है । इस अणु बीज में छिपी अदृश्य शक्ति ‘अणिमा’ ही विश्व के रूप में परिणत हुई — यह अणिमा ही आत्मा है, यह आत्मा तुम स्वयं हो, यही सत्य है ।²

यह, वह ‘कुछ नहीं’ या अणिमा क्या है ?
अणुओं में छिपी अव्यक्त शक्ति ।

क्या यह ‘कुछ नहीं’ असत् था ?

हाँ, यह ‘अणिमा’ असत् थी, लेकिन इस अर्थ में कि तब यह नामरूपात्मक सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त न थी । अन्यथा कहीं असत् से सत् उत्पन्न हो सकता है क्या ?

१. य वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयसे

एतस्य वै सोम्यैषोऽणिमः महान् न्यग्रोध स्तिष्ठति ... । छान्दोग्योपनिषद् ६/१२/२

२. स य एषोऽणिमा, ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं, स आत्मा, तत्त्वस्सि श्वेतकेतो !

वही ६/१२/३

— कथं नु सोम्यैवं स्यात् ? कथमसतः सज्जायेत्?^३

अणु बीज में अन्तर्निहित 'अणिमा' क्या बीज से भिन्न है?

नहीं, वह बीज की अनन्य शक्ति है। यही शक्ति बीज को विशाल वृक्ष के रूप में परिणत करती है। 'अणोरणीयान्' बीज को यही शक्ति 'महतो महीयान् वृक्ष' बनाती है।

इस अणुबीज की 'अणिमा', इसकी चित् शक्ति, जब तक सक्रिय नहीं होती, बीज अनन्त काल तक निर्विकार, अनभिव्यक्त, निष्क्रिय पड़ा रह सकता है। किन्तु, जैसे ही वह जग जाती है, बीज में स्पन्दन होता है, बीज के वृक्ष बनने की प्रक्रिया आरम्भ होती है, बीज वृक्ष बन जाता है।

अणु के भीतर जो अणिमा है, वह उसकी अपनी शक्ति है, उसका अपना 'स्वभाव' है। शक्ति और शक्तिमान् में अभेद है—शक्तिशक्तिमतो रभेदः।

किन्तु, अपनी चित् शक्ति इस 'अणिमा' की सक्रियता के बिना शक्तिमान् निरर्थक, निश्चेष्ट है। वह शक्ति के द्वारा ही संसार—वृक्ष के रूप में परिणत होता है। दूसरे शब्दों में उसकी चित् शक्ति ही विश्वरूप में परिणत होती है।^४ क्योंकि शक्तिमान् 'शिव' निर्विकार है, विश्व के रूप में परिणमन उसमें संभव नहीं। उसकी चिति स्वतंत्र है, शिव पराधीन। चिति में स्वतंत्र रूप से परिणमन आदि संभव है, शिव में नहीं। शिव यदि शक्ति से युक्त है, तभी वह सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह रूपी प्रपञ्चन कार्य में सफल होता है, अन्यथा वह केवल 'शब्द' है—
'शक्त्याः हीनः शिवः शब्दः।'

उस बीज में अन्तर्निहित प्रसुप्त अणिमा में स्पन्दन हुआ, एक व्यग्रता—जगी, एक सिसृक्षा हुई। उसने इच्छा की — मैं बहुत हो जाऊँ^५ अपने को नाम और रूप में व्याकृत करूँ, अभिव्यक्त करूँ।^६

३. वही १२/२/२

४. त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्वपुष्टा, चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विमृशो।

सौन्दर्यलहरी—३४।

५. तदैच्छत बहु स्यां प्रजायेयेति.

छान्दोग्य—६/२/३।

६. अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि।

वही—६/३/२।

वह चिति मनस् (होता या यजमान), अग्नि, जल, पृथ्वी, चित् (सूर्य) और आनन्द (चन्द्रमा) के रूप में परिणत हो गई। शक्ति के परिणमन विश्वाकार इस अष्टमूर्तियों के अलावा विश्व और कुछ भी नहीं है।^{१७} शक्ति की यह अष्टमूर्तियां ही शिव की प्रत्यक्ष अष्टमूर्तियां हैं।^{१८}

परम शिव की चित् शक्ति ही विश्वाकार में परिणत हुई, सृष्टि के बीज के रूप में वर्तमान शक्ति ही स्थूल—और सूक्ष्म रूप त्रैलोक्य के रूप में परिणत हुई। समस्त सृष्टि उसी की 'रूपात्मक' अभिव्यक्ति है।^१

फिर प्रत्येक रूप के लिए भिन्न-भिन्न, अनन्त नाम। यह सब कुछ नाम ही तो है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्व...इतिहास-पुराण आदि सब कुछ नाम ही हैं।^{१०}

यह 'नाम' क्या है ?

वाणी का केवल विकार, किसी भी रूप की प्रतीति का माध्यम।
असली वस्तु तो 'रूप' है।^{११}

किन्तु 'नाम' रूप के ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में, नाम और रूप एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। कहने को भिन्न, लेकिन, तत्त्वः अभिन्न ।^{१२}

७. मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिरत्वयि परिणतायां नहि परम् ।

८. त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुक्तिभावेन विमृशे ॥

९. या सृष्टिः स्पष्टुरादया वहति विधिहृतं या हवि र्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः ।
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नन्तरानुभिरवत् वस्ताभिरस्ताभिरीशः ।

१०. कालिदासः (अभिज्ञाने)
सूर्यो जलं मही वहिन वायुराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोमः इत्येता स्तनवः स्मृताः ॥

११. विष्णुपुराणे ।
त्रिपुरा परमा शक्तिरादयजाता महेश्वरी,
स्थूलसूक्ष्मस्वभावेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका । चतुःशती,

(सौंदर्यलहरी पर नरसिंह स्वामिकृत गोपालसुन्दरी टीका से उद्धृत ।)

१२. छान्दोग्य ७/१/४.
वाचारमणं विकारो नामधेयम्, मृतिकेत्येव सत्यम् ।

१३. छान्दोग्य ६/१/४.
गिरा अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।

१४. तुलसी ।
वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रितपत्तये । कालिदासः

नाम 'वाक्' है। और, यह जो कुछ, है वाक् रूप ही है। वाक् नाम का मूल है, सार है, नाम का आधार है।^{१३}

वह अव्यक्त अणिमा नाम और रूप के द्वारा ही व्यक्त हुई—'यह नाम है और इस नाम का यह रूप' इस प्रकार से।^{१४}

अतः प्रतिप्रसव (उलटे) क्रम से उस अव्यक्त चिदात्मा को अपने में व्यक्त करने का माध्यम भी नामरूप ही है। चिदात्मा पहले नाम—'असौ नाम', फिर रूप—'अयमिदं रूपः' इस क्रम से अभिव्यक्त हुआ। अब, इसकी ओर लौटने का क्रम→रूप→नाम→और चिदात्मन् ही है। इस प्रकार रूप से नाम महत् है, क्योंकि वह आत्मन् के अधिक निकट है। रूप परिच्छिन्न है, नाम अपरिच्छिन्न।

तुलसी कहते हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी/अकथ अनादि सुसामुझि साधी ।

को बड़ छोट कहत अपराधू/सुनि गुन—भेद समुद्धिहिं साधू ।

देखिअहिं रूप नाम आधीना/रूप ज्ञान नहिं नाम बिहूना ।

रूप विशेष नाम बिनु जाने/करतलगत न परहिं पहिचाने ।

सुमिरिअ नाम रूप बिन देखे/आवत हृदयें सनेह विसेषें ।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा/अकथ अगाध अनादि अनूपा ।

मोरें मत बड़ नाम दुहू तें/किए जोहि जग निज बस निज बूतें ।

उभय अगम जुग सुगम नाम तें/कहेउं नाम बड़ ब्रह्म राम तें ।

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ ।

नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ ।

राम भालु कपि कटक बटोरा/सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ।

नाम लेत भवसिन्धु सुखार्हीं/करहु बिचार सुजन मनमार्हीं।^{१५}

१३. वाग् वाव नाम्नो भूयसी, वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति.... छान्दोग्य ७/२/१

** नाम वा, ऋग्वेदो यजुर्वेद.....वही ७/१/४

१४. तद् ह इदं तहर्यव्याकृतमासीत् । तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत असौ नामायमिदं रूपः इति । बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय—१, ब्राह्मण—४ मंत्र—७

१५. रामचरितमानस (बालकाण्ड)

प्रपञ्चात्मक जगत् का ज्ञान नाम के अधीन है। नाम वाक् पर निर्भर है। यह 'वाक्' स्वयं परमेश्वरी है। वाक् से प्रतिपाद्य समस्त अर्थ स्वयं शिव हैं। ये दोनों परस्पर संपृक्त अर्धनारीश्वर रूप हैं—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥६

वाक् और अर्थ, शिव और शक्ति कहने भर के लिए भिन्न हैं, वास्तव में, भिन्न हैं नहीं। ये जल और तरंग की तरह कहने, सुनने और देखने में भिन्न हैं, लेकिन तत्त्वतः अभिन्न हैं—

गिरा—अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।

वन्दउं सीतारामपद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥७

परस्पर संशिलष्ट शिव और शक्ति के "वाक् वपुष्" (वाङ्मय शरीर) के दो बाह्य भेद हैं— स्वर और व्यंजन। सभी सोलह स्वर शक्ति स्वरूप हैं और सभी ३५ व्यंजन शिव स्वरूप। इन्हीं के परस्पर संश्लेष से नामरूपात्मक समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है। इनमें शक्तिस्वरूप स्वर स्वतंत्र हैं और शिवस्वरूप व्यंजन शक्त्याश्रित या स्वराश्रित, अतएव परतंत्र ॥८

शक्त्यात्मक सोलह स्वर निम्नांकित हैं—

अ	आ	इ	ई
उ	ऊ	ऋ	ऋ
लृ	लृ	ए	ऐ
ओ	औ	अं(−)	अ:(:)

१६. रघुवंश - १/१ कालिदास

१७. रामचरितमानस (बालकाण्ड)

१८. ककारादिक्षकारान्ता वर्ण स्ते शिवरूपिणः ।

समस्तव्यस्तरूपेण षट्त्रिंशत्तत्त्वविग्रहः ।

अकारादिविसर्गान्ता: स्वरा: षोडष शक्तयः ।

नित्या: षोडषकात्मानः परस्परं समायुताः ।

शिवशक्तिमया वर्णाः शब्दार्थप्रतिपादकाः,

शिवः स्वरपराधीनो न स्वतंत्रः कथंचन ।

स्वरा: स्वत्रंता जायन्ते न शिवस्तु कदाचन ।

(मातृकादूषण) गोपालसुन्दरी से उद्धृत ।

पैंतीस व्यंजन निम्नांकित हैं :—

क्	ख्	ग्	घ्	ड् ।
च्	छ्	ज्	झ्	ञ् ।
ट्	ठ्	ड्	ढ্	ण् ।
त्	थ्	द्	ধ্	ন् ।
প্	ফ্	ব্	ভ্	ম् ।
য্	র্	ল্	ব্	শ্ ।
স্	ষ্	ল্	হ্	ক্ ।

ये स्वर-व्यंजन 'वाग्वपु' शिव-शक्ति के स्वरूप हैं। ये नामात्मक जगत् के बीज हैं। ये बीजाक्षर हैं। इनमें निहित शक्ति ही विश्ववपु चिदात्मतत्त्व का बोध कराती है।

किसी शब्द में निहित शक्ति ही उस शब्द के वाच्य-अर्थ का ज्ञान कराती है। वैशेषिकों के अनुसार — 'इस पद-विशेष से इस अर्थ-विशेष को जाना जाय, ऐसा ईश्वर का संकेत ही शक्ति है' ॥

जिस प्रकार किसी शब्द विशेष से अर्थ विशेष का ज्ञान होता है, उसी प्रकार स्वरव्यंजनात्मक वर्ण विशेषों से उनमें निहित 'शक्ति' के द्वारा अर्थ विशेषों का ज्ञान होता है। इस तरह एक-एक वर्ण के भी अपने अर्थ होते हैं।

जिस तरह सम्पूर्ण वस्तु-जगत् अव्यक्त बीजरूप में स्थित शिव-शक्ति का संयुक्त परिणमन है, उसी प्रकार स्वर-व्यंजनों का संयुक्त बीजरूप 'परावाक्' विश्व की निखिल वस्तुओं के नाम का बीज है।

इस लौकिक सृष्टि में ऐसा कोई प्रत्यय, पदार्थ या वस्तु नहीं, जिसे शब्द के बिना जाना जा सके। माला की अनेक मणियों के बीच सूत्र की तरह सब कुछ शब्द से गुफित है, अनुस्यूत है ॥० नाम हो या आख्यात, उपसर्ग हो या निपात सभी कुछ शब्द हैं।

ऐसा कोई शब्द नहीं, जो स्वर-व्यंजन रूप वर्ण या वर्णों से रहित हो तथा ऐसा कोई अर्थ या प्रत्यय नहीं जो स्वर-व्यंजनात्मक वर्ण या वर्ण

१९. अस्मात् पदादयमर्थो बोधव्य इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः । तर्कसंग्रहः ।

२०. न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥

वाक्यपदीयम् -१/१२/३

—समूह से गम्य न हो। वास्तव में, यह सब कुछ बीज रूप से 'वाक्' है। सब कुछ वाड़मय ही है। वाग्बीज विश्वबीज है।

यह सारी सृष्टि ऊर्ध्वमूल अधःशाखा वाला अश्वत्थ है। इस संसार-रूप अश्वत्थ का बीज ईश्वर, ब्रह्म या शिव है। महद् (प्रकृति) उसकी योनि (माँ) है और परात्मा शिव बीजप्रद पिता।^{१९} इस अश्वत्थ रूपी महान् वृक्ष (सृष्टि) के बीज का वाग्-रूप 'ओम्' है। यह 'ओम्' ही उस अणिमा, उस 'कुछ नहीं' से अभिव्यक्त 'सब कुछ' है। वह जो भूत था, यह जो वर्तमान है, हो रहा है, जो भविष्यत्—होने वाला है, इसके अलावा जो कुछ भी त्रिकालातीत है, वह भी 'ओम्' ही है।^{२०}

यह 'वाड़मय ओम् बीज' ईश्वर का नाम है, उसका वाचक है। ब्रह्म इसका वाच्य है।^{२१} ओम् वाक् है, ब्रह्म उसका अर्थ है। ये दो नहीं, जल—तरंग की तरह अभिन्न एवं एक हैं। विश्व के समस्त वागर्थ के ज्ञान के लिए 'वागर्थप्रतिपत्तये' ईश्वर के नाम आं बीज को ईश्वर की भावना करते हुए जपना चाहिए।^{२२} वेदादि समस्त वाड़मय इसी ओम् का प्रतिपादन करते हैं, संसार के सभी कर्म इसी के लिए हैं, समस्त अध्यात्म विद्या के उपासक इसी की उपासना करते हैं। यह अक्षर ब्रह्म है, यही अक्षर परात्पर है। इसे जानकर व्यक्ति जो भी चाहता है, उसे वह मिलता है।

नाम (ओम्) और नामी (ब्रह्म) में अभेद है। ओम् भूमा है। जो भूमा है, वही सुख है। अल्प, परिच्छिन्न या सीमित में सुख कहाँ? इसलिए आनंद, सुख या आत्मशांति प्राप्त करने के लिये 'ओम्' इस ईश्वर के वाचक प्रणव बीज का जप करना चाहिए।

२१. सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्यः संमवन्ति याः ॥

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।

श्रीमद्भगवद् गीता १४/३४

२२. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोक्षकार

एव। यच्चान्यत्किंचित्त्रिकालातीतं तदप्योक्तार एव।

मुड्कोपनिषद्—१

२३. तस्य वाचकः प्रणवः ।

पातंजलयोगदर्शनम् १/१७

२४. तज्जपस्त्तदर्थभावनम् ।

—ब्रह्म १/२८

२५. सर्वे वेदा यत्पदमासनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमेतत् ।

एतद्वच्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्वच्येवाक्षरं परम् ।

एतद्वच्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

कठोपनिषद्—वल्ली—२, मंत्र—१५—१६

ओम् बीज है। वट बीज की तरह। वट के अणु बीज में उसका आवरण (छिलका) दल और अंकुर ये तीन तत्त्व होते हैं। आवरण को हटाएं तो द्विदल दिखाई देते हैं, द्विदल को अलग करें, तो उनके बीच अंकुर दिखाई देगा। इस अंकुर को तोड़िये, तो उसके अन्दर 'कुछ नहीं' मिलेगा। यह 'कुछ नहीं' ही इस अणु बीज की शक्ति, 'अणिमा' है। यह अणिमा ही अणु-बीज को विशाल वट वृक्ष के रूप में परिणत करती है।

'ओम्' इस अणु-बीज में अ, इ तथा उ तीन अक्षर हैं। ये क्रमशः आवरण, दल और अंकुर हैं। इनके अलावा इस ओम् में एक अनिर्देश्य, अव्यवहार्थ, अग्राह्य चतुर्थ मात्रा भी है। यह चतुर्थ मात्रा ही अ उ और म् बीज में छिपी वह अव्यक्त 'अणिमा' है, जो इस बीज ओम् को विश्वाकार का वाचक बनाती है। यह 'अणिमा' प्रपञ्चोपशम, शिव, अद्वैत, आत्मशक्ति, पर शिव है।^{१६}

ओम् तो केवल वाचक है, नाम है। इसका वाच्य है ब्रह्म। यह ब्रह्म क्या है?

जहाँ से ये सभी प्रपञ्च उत्पन्न होता है, जिसमें स्थित रहता है और अन्त में जिसमें समा जाता है वही 'ब्रह्म' है।^{१७}

ओम् से चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है—ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं चराचरम्।^{१८} इसकी चार मात्राओं में से—अ उ म् ये तीन मात्राएं अखिल सृष्टि की वाचक हैं—चतुर्थ मात्रा (अनुस्वार) विश्वोत्तीर्ण है। इसे यूं समझें—

अ	उ	म्	अमात्रिक(बिन्दु)
पृथ्वी	अन्तरिक्ष	द्यौः	विश्वोत्तीर्ण
अग्नि	यजुर्वेद	सूर्य	
ऋग्वेद	भुवः	सामवेद	

२६. अमात्र श्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोक्षार आत्मेव....

मांडूक्योपनिषद्—१२

२७. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म।

तैत्तिरीयोपनिषद्, मृगुवल्ली—अनुवाक—१

२८. ध्यानविंदूपनिषद्—१६

भूर्लोक	विष्णु	स्वर्लोक
पितामह (ब्रह्मा)		महेश्वर
रजस्	सत्त्व	तमस्

निगुणं

ओंकार की प्रथम तीन मात्राएं परात्पर चतुर्थ मात्रा का केवल पाद (चतुर्थांश) मात्र हैं। इन्हीं तीन मात्राओं या चतुर्थांश में चराचर जगत् है। इसके तीन पाद विश्व से परे (दिवि) अमृत रूप हैं ॥१॥

वाचक ओंकार के चार पादों की भाँति ही इसके वाच्य आत्मा के भी चार पाद हैं—

वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ और प्रपञ्चोपशम शिव ।

वैश्वानर की अभिव्यक्ति जाग्रत् अवस्था में होती है। यह 'बहिःप्रज्ञ' है। अर्थात् बाह्य विषयों का प्रकाशक है। यदि इस वैश्वानर आत्मा को पुरुषरूप माना जाय, तो इसके सात अंगों में, सिर द्युर्लोक है, नेत्र सूर्य है, प्राण वायु है, देह आकाश है, वस्ति जल (सागर) है और चरण यह पृथ्वी है।

यह वैश्वानर आत्मा उन्नीस मुखों वाला है। ये मुख हैं—

५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां, ५ प्राण और ४ मनस्, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त। इन उन्नीस मुखों द्वारा यह बाहरी (भौतिक) विषयों को भोगता है।

आत्मा का द्वितीय पाद तैजस् कहलाता है। यह स्वप्न लोक का स्वामी है। यह अन्तःप्रज्ञ है। यह भी सप्तांग और उन्नीस मुखों वाला है और उनसे सूक्ष्म विषयों को भोगता है।

आत्मा का तृतीय पाद प्राज्ञ कहलाता है। यह सुषुप्ति का स्वामी है। यह प्रकाशमय तथा ज्ञानस्वरूप है और आनन्द का भोक्ता है। इसका मुख चेतस् (चेतना) है।

यह प्राज्ञात्मा अन्तर्यामी है, सर्वेश्वर है और सभी चेतन—अचेतन का उत्पत्ति और लयस्थान है।

आत्मा का चतुर्थ पाद न बहिःप्रज्ञ है और ना ही अन्तःप्रज्ञ। यह दोनों का मिलाजुला रूप (उभयात्मक) भी नहीं है। इसके अलावा न तो यह

२९. पादोस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

ऋग्वेद — १०/१०/३

प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञा और ना ही अप्रज्ञ ।^{३०}

आत्मा का यह चतुर्थ पाद अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राहय, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य, प्रपञ्चोपशम, एकात्मप्रत्ययसार, शान्त, शिव और अद्वैत है।

यह चतुर्थ पाद विश्व—वट के बीज की वही 'अणिमा' है, जिसमें सारा विश्ववट अन्तर्निहित है।

ओम् इसी ब्रह्म का वाचक बीज है। ब्रह्म या परम शिव अपनी अनन्य परा शक्ति से पृथक् नहीं। इसलिए उसका वाचक—बीज ओम् शक्ति का भी वाचक है।

ओम् के अ और उ शक्ति वाचक बीज हैं। म् और अदृष्ट चतुर्थ मात्रा (बिन्दु) शिव बीज हैं। क्योंकि सभी स्वर शक्त्यात्मक हैं और सभी व्यंजन शिवात्मक।^{३१} जहां तक बिन्दु का प्रश्नन है वह तो शिवमय ही है—अहं बिन्दु विंसर्गस्त्वं।^{३२}

इस प्रकार 'ओम्' शिवशक्त्यात्मक बीज है। यह शिव और शक्ति दोनों का वाचक नाम है। शिव को शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। वह उभयात्मक है, अर्धनारीश्वर है। क्योंकि, अर्धनारीश्वर जगत् के माता—पिता हैं, इसलिए जगत् की प्रत्येक वस्तु स्त्री—पुरुषात्मक है। अन्तर है, तो केवल अभिव्यक्ति का। कभी उसका पुंस्त्व प्रधान हो जाता है और कभी स्त्रीत्व। पुंस्त्वप्रधानता से वह पुरुष है, और स्त्रीत्व की प्रधानता से स्त्री।^{३३}



३०. द्रष्टव्य—माण्डूक्योपनिषद् ।

३१. ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्ते शिवरूपिणः ।

अकारादिविसर्गान्ताः स्वराः षोडश शक्तयः ॥

गोपालसुन्दरी से उद्घृत

३२. शिवदृष्टिःवही

अर्थर्ववेद—१० / ८ / २७

३३. त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।

गृहाहितम्

बीज मंत्रों की संयोजना वर्णों पर आधारित है। कुल वर्ण ५१ (सोलह स्वर तथा ३५ व्यंजन) हैं। इनमें प्रत्येक वर्ण कई अर्थों का वाचक होता है। फिर किसी भी वर्ण या शब्द से आप अपनी भावना के अनुसार किसी भी अर्थ का आहरण कर सकते हैं। क्योंकि, जहाँ वर्ण या शब्द कुछ निश्चित अर्थ के वाचक होते हैं, वहीं वे वक्ता और श्रोता की अपनी इच्छा के अनुसार भी अर्थ देते हैं। वाल्मीकि ने 'मरा—मरा' जप कर भी राम रूपी अर्थ प्राप्त किया था।

स्तुतः वर्णों (शब्दों) से अर्थ की प्रतीति या प्राप्ति का मुख्य आधार भावना ही है। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने प्रणव (ओंकार) को ईश्वर का वाचक कहते हुए उसके जप के लिए उसकी भावना करने का निर्देश दिया है — 'तस्य वाचकः प्रणवः, तज्जपस्तदर्थभावनम् ।'

यदि एक बीज या मंत्र के कई देवता हैं, अर्थात् वह बीज या मंत्र कई देव—शक्तियों का वाचक है, तो उसके जप से, उसकी साधना से वही देवशक्ति आविर्भूत होगी, जप करते हुए जिसकी भावना की जायेगी।

मातृका (वर्णमाला) के प्रत्येक वर्ण अपने भीतर निखिल ब्रह्माण्ड के अनेक अर्थ छिपाये हुए हैं। एक—एक वर्ण कई—कई अर्थों के वाचक हैं। दैविक—साधना के सन्दर्भ में 'ओं' बीज समस्त सृष्टि, यहाँ तक कि समस्त सृष्टि से उत्तीर्णता का भी वाचक है। इस बीज के अ, उ, म् तथा बिन्दु किस तरह स्थूल, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय, विश्व, तैजस् प्राज्ञ और परब्रह्म आदि के वाचक हैं, इसका किंचित् संकेत पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। लगभग सभी उपनिषदों, शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों और विभिन्न सांप्रदायिक ग्रन्थों में 'ओम्' की महिमा और इसकी व्याहृतियों (अ उ म् एवं अनुस्वार) का व्यापक विश्लेषण मिलता है।

'ओम' इस मूल बीज मंत्र के अलावा अन्य अनगिनत बीज मंत्र हैं। इन सभी मंत्रों की निर्मिति बीजाक्षरों के योग से की गई है। बीजाक्षर मातृकाएँ ही हैं। प्रत्येक मातृका के भिन्न-भिन्न कई अर्थ हैं। मंत्रसाधना में इनके मूल अर्थों की जानकारी आवश्यक है। क्योंकि, अर्थ जानकर ही उसकी भावना की जा सकती है और भावनापूर्वक जप करने से ही मंत्र (उसका देवता) फल प्रदान करता है।

प्रस्तुत प्रसंग में कठोपनिषद् के कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बीजमंत्रों और उनकी मातृकाओं तथा अन्य बीजमंत्रों के बारे में लिखना उपयोगी रहेगा। क्योंकि मेरी धारणा है कि कठोपनिषद् में परब्रह्म, उसकी पराशक्ति तथा उसके बीज मंत्रों का रहस्यात्मक विवेचन किया गया है। यह रहस्य या तो गुरुगम्य है, अथवा जिस पर परतत्त्व की कृपा हो, वही इसे जान सकता है।

परम गुरु यमराज ने नचिकेता को इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा था कि 'उस परम तत्त्व के बारे में बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलता, बहुत से ऐसे हैं जो उसके बारे में सुनकर भी नहीं समझते। वास्तव में, वह तत्त्व किसी कुशल आचार्य द्वारा ही निरूपित किया जा सकता है और उसे प्राप्त करने वाला शिष्य भी कोई अद्भुत व्यक्ति ही होता है'।^३

इस तत्त्व के ज्ञान के लिए यमराज ने नचिकेता से कहा था कि 'उठो, जागो और श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।'^४ 'सारे वेद जिस पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसकी प्राप्ति के साधन हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता

२. श्रवणायापि बहुभि यों न लभ्यः

शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।

आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा –

श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥।

३. उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथ स्तत्कवयो वदन्ति । वही – १/३/१४

कठोपनिषद् – १/२/७

है, संक्षेप में वह पद 'ओम' है।^४

यम ने नचिंकेता को पद (ओम) के बारे में बताया था, पदार्थ (परतत्त्व) के बारे में नहीं। वह इसलिए कि पदार्थ (ब्रह्म) की अनुभूति पद (ओम) की साधना के बिना संभव ही नहीं।

ओम् पद ब्रह्मरूपी पदार्थ का वाचक है—तस्य वाचकः प्रणवः। ओम् ब्रह्म का बीज नाम है। यम ने नचिंकेता को इसी बीज का उपदेश दिया था। इस ओम् बीज से जिस अर्थ की अनुभूति होती है; वह केवल अनुभूतिगम्य है, उसे तर्क से नहीं जाना जा सकता। उसे प्रवचन, मेधा, (धारणा शक्ति) अथवा बहुज्ञता (बहुत श्रवण—पठन आदि) से भी नहीं जाना जा सकता।^५ उसे तो उसी आत्मा के प्रसाद से जाना जा सकता है, जिसकी साधना की जाती है। यह आत्मतत्त्व अपने साधक के लिए स्वयं अपने स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।^६

तात्पर्य यह कि आत्मतत्त्व की साधना में लगे साधक को स्वयं आत्मतत्त्व ही अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराता है, कोई अन्य उसे नहीं करा सकता। उस आत्मतत्त्व, (ब्रह्म) की साधना के लिए उसका (वाचक) नाम ओम् ही सर्वाधिक महत्त्व का साधन है। इसी नाम से उसकी साधना करनी चाहिए। साधना का सर्वाधिक सरल रूप है जप—तज्जपस्तदर्थभावनम्।

ओंकार वाच्य यह परतत्त्व ब्रह्म अपनी ही आवरणात्मिका पराशक्ति से आवृत है। इस आवरण के भंग हुए बिना उसका साक्षात्कार संभव नहीं। ईशावास्योपनिषद् में इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि उस 'सत्य' का मुख हिरण्मय पात्र से ढका हुआ है—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।^७ यह हिरण्मय पात्र परब्रह्म की अपनी आवरणात्मिका शक्ति माया ही है।

४. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मर्चयं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्। वही—१/२/१५
५. नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्यैनैव सुज्ञानाय श्रेष्ठ। वही—१/२/१९
६. यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूस्वाम्। वही—१/२/२३
७. ईशोपनिषद्—१५

इसी तथ्य की ओर यम ने संकेत करते हुए कहा था कि 'वह दुर्दर्श परात्मा गुहा में गूढ़ रूप से अनुप्रविष्ट है।' तो, वह गुहा क्या है, जिसमें परतत्त्व अत्यन्त गोपनीय ढंग से स्थित है। आचार्य शंकर ने इस गुहा को 'बुद्धि' माना है।^१ लेकिन ऐसा है नहीं। क्योंकि 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' न मेघयाबुद्धेरात्मा महान् परः 'आदि के द्वारा परतत्त्व के बुद्धिगम्य होने का खण्डन स्वयं हो जाता है।

यहां यद्यपि यम ने – दृश्यते त्वग्रन्थया बुद्ध्या सूक्ष्मदर्शिभिः^२ कहकर अग्रन्था अर्थात् तीव्र शुद्ध बुद्धि से आत्मतत्त्व के प्रकाशित होने की बात कही है, लेकिन, यह अग्रन्था-बुद्धि सामान्य बुद्धि नहीं, अपितु वह सूक्ष्म बुद्धि है, जो परतत्त्व पर पड़े हुए स्वर्णावरण को भेदकर उसे अनावृत कर देती है।

जिस 'गुहा' में वह परतत्त्व निहित है, उसे गीता में 'योगमाया' कहा गया है—'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः'^३ जिस तरह परतत्त्व का वाचक या अभिधान ओम् है, उसी तरह उसकी आवरणात्मिका योगमाया का भी कोई न कोई अभिधान या वाचक बीज होना चाहिए। वह है, और वह 'गुहा' शब्द से वाच्य 'हीं' ही है। अर्थर्वशीर्ष, आचार्य शंकर और योगमाया के अंसरख्य साधक हीं को ही 'मायाबीज' कहते हैं।^४

नचिकेता ने जिस परतत्त्व के बारे में जानना चाहा था, उसका वाचक पद यम ने 'ओम्' बताया था और वह परतत्त्व अपनी जिस माया के आवरण में ढका हुआ या गूढ़ है, उसे उन्होंने 'गुहा' कहा था। 'गुहा' का तात्पर्य पराशक्ति 'हीं' ही है। इसी शक्ति की ओर सप्तशती के रात्रिसूक्त ने इंगित किया है।^५

८. तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गहरेष्ठं पुराणम्।

कठ-१/२/१२

९. 'गुहाहितं, गुहायां बुद्धौ स्थितं'

वही – शांकरभाष्य

१०. वही – १/३/१२

११. गीता – ७/२५

१२. अर्थर्वशीर्ष तथा सौन्दर्यलहरी आदि में द्रष्टव्य –

१३. त्वं श्री स्त्वमीश्वरी त्वं ही स्त्वं बुद्धि बोधलक्षणा ॥ ८

यमराज ने परमतत्त्व 'ओम्' के बारे में नचिकेता को बताने से पहले ब्रह्म की आवरणत्मिका शक्ति गुहा (हीं) के बारे में बताया था। उसके पश्चात् उसे भौतिक समृद्धि प्रदान करने वाली कई विद्याएं देने का प्रस्ताव भी किया, जिन्हें लेने से आत्मतत्त्व के जिज्ञासु नचिकेता ने मना कर दिया ।^{१४}

यमराज ने स्वर्ग की साधनभूत जिस अग्नि (अग्निं स्वर्ग्यम्) की जानकारी नचिकेता को दी थी, वह इस गुहा की साधना ही है। इस हीं की साधना से ही अमृततत्त्व या देवतत्त्व की प्राप्ति होती है। आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी के 'भवानि त्वं दासे' श्लोक में इसी साधना की ओर इंगित किया है।

नचिकेता द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली गुहा—साधना का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त कर लेने पर यमराज ने इहलौकिक अर्थात् भौतिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए जो 'सृंका' नचिकेता को देनी चाही थी, वह कोई सामान्य माला नहीं थी। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में इसे—'सृंकां शब्दवर्तीं रत्नमयीं मालामिमामनेकरूपां विचित्रां— यद्वा सृंकाम् अकुत्सितां गतिं कर्ममयीं' कहा है।^{१५}

वास्तव में, जिस प्रकार यम ने नचिकेता को ओम् तथा हीं का रहस्य समझाकर उसे क्रमशः मुक्ति और स्वर्ग के साधनों का ज्ञान कराया था, उसी प्रकार भौतिक जगत् में प्रेयस् प्राप्ति के साधन के रहस्य भी बताने चाहे थे, लेकिन नचिकेता ने उन्हें जानने के लिए कोई उत्सुकता नहीं दिखाई थी। यम ने नचिकेता से कहा था कि—'सृंकां चेमाम् अनेकरूपां गृहाण'।^{१६} वस्तुतः, जिस प्रकार 'गुहा' शब्द से परमेश्वर नी माया शक्ति 'हीं' अभिप्रेत है, उसी प्रकार 'सृंकां चेमाम्' शब्दों से भी भौतिक—समृद्धि प्रदायिनी शक्तियों की ओर इंगित किया गया है। 'हीं' जिस तरह मायाशक्ति का बीज है, उसी तरह—सृंकां, चें और आं अथवा सृं कां (च) ईं, तथा आं भी वे बीज हैं, जिनकी साधना से

१४. नैतां सृंकां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः।

कठ—१/२/३

१५. कठ १/१/१६ पर शांकरभाष्य

१६. वहीं—१/२/३

अपार भौतिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है ।

आचार्य शंकर ने भी 'सृंकाम्' को 'शब्दवर्ती' विशेषण देकर शायद इसी रहस्य की ओर इंगित किया है । यम ने स्वयं 'सृंकां' को 'वित्तमयीम्' कहा है । तात्पर्य यह कि सृंकां को ग्रहण करने – अर्थात् उनकी साधना करने से प्रभूत संपत्ति की प्राप्त होती है ।

विचारणीय यह है कि कठोपनिषद् का 'सृं' कहीं भगवती श्री का वाचक बीज 'श्रीं' तो नहीं । यह संभव है । श्रीं का 'सृं' हो जाना असंभव नहीं । आचार्यों ने बीजाक्षरों को प्रायः गोपनीय रखा है । जैसे हीं के लिए गुहा शब्द का प्रयोग हो सकता है, तो श्रीं के लिए सृं का क्यों नहीं ? फिर बीजाक्षर तो अनंत है । सृं अपने आप में श्री का वाचक बीज हो सकता है । सृं सृजन बीज हो सकता है – तदैच्छत बहुस्यां प्रजायेय ।^{१७}

जहां तक 'कां' बीज का प्रश्न है, यह श्रीवाचक ही है । श्रीसूक्त में 'कां सोस्मिताम्' वाली ऋचा में 'कां' बीज स्पष्टतः भगवती श्री का प्रतिपादक है । यह कामना बीज भी हो सकता है – 'सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेत' ।^{१८}

चें, आम् और ई भी भौतिक समृद्धिदायक विभिन्न शक्तियों के बीज हैं ।



१७. छान्दोग्य – ६/२/३

१८. बृहदारण्यक – १/२/४

अदिति: देवतामयी

परम शिव का वाचक बीज ओम् है। ओम् की अकार, उकार, मकार और प्रपंचोपशप रूप चार मात्राओं में से अकार और उकार शिव की चित्-शक्ति और मकार तथा बिन्दु परम शिव के वाचक हैं। मकार तथा अनुस्वार (बिन्दु) का उच्चारण बिना स्वर शक्ति अकार और उकार के नहीं हो सकता, वे निष्क्रिय रहते हैं— ‘शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।’^१ फिर भी प्रधानता के कारण ‘ओम्’ परमतत्त्व का वाचक है। इसलिए कि अकार के उकार में, उकार के मकार में और मकार के चतुर्थमात्रिक ब्रह्म में लीन हो जाने से अन्ततः परमशिव ही शेष रहता है। किन्तु बीज रूप में शक्तितत्त्व भी उसमें अन्तर्निहित रहता है। और, यही चित् शक्ति प्रसव (सृष्टि) काल में स्वात्म भित्ति पर विश्व का उन्मीलन करती है।^२

कठोपनिषद् इस चित् शक्ति को ‘अदितिः’ कहती है। अदिति का उन्मीलन प्राण (परम शिव) से होता है।^३ ‘अदितिः’ शब्द में ‘अत्’ इत्’ ‘इ’ और विसर्ग (:) ये छः अक्षर या वर्ण हैं। इनमें अत् और इत् में से ‘त्’ का प्रयोग केवल स्वरूप (अ तथा इ) के प्रतिपादन के लिए हैं।^४ अर्थात् ये दोनों केवल अ और इ मात्र हैं। यहां एक अकार, दो इकार, तथा विसर्ग ये चार वर्ण ही अभिप्रेत हैं।

ये चारों ही वर्ण शक्ति के बीज हैं—‘अ’ ऐं का ‘इ’ हीं का ‘इ’ कर्लीं का और : (विसर्ग) श्रीं का प्रतीक है। क्योंकि अकार से लेकर विसर्ग तक सभी सोलह स्वर वर्ण शक्ति के ‘स्व’ वाचक बीज हैं।

१. सौन्दर्यलहरी । १

२. अभिनवगुप्त ।

३. या प्राणेन संभवत्यदिति देवतामयी..

गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभि व्यजायन्त । एतद् वै तत् । २/१/७
४. तपरस्तत्कालस्य । पाणिनि: १/१/७०

अथवा 'अदिति:' का अकार शिव रूप है और शिव स्वयं बिन्दु रूप-'अहं बिन्दुः।' दोनों इकार शक्ति रूप तो हैं ही, विसर्ग (.) भी शक्ति रूप ही है—'विसर्गः त्वम्'। इस प्रकार शक्ति त्रितय अर्थात् शक्ति के तीन रूपों (ऐं, हीं तथा कलीं) की अभिव्यक्ति होती है। इन तीनों में प्राण या शिवरूप अकार बिन्दु के रूप में स्थित है। तात्पर्य यह है कि—ऐं, कली, हीं शक्ति बीजों की पूर्णता उनमें बिन्दु (अनुस्वार) द्वारा ही होती है। इसी प्रकार केवल बिन्दु (शिव) निष्क्रिय—स्पन्दहीन और निर्विकार रहता है। इन दोनों शिव और शक्ति बीजों के योग से ही विश्व का उन्मीलन (अभिव्यक्ति और वाच्यत्व) होता है।

देवी प्रणव 'हीं'

निखिल देवतामयी अदिति का वाचक बीज 'हीं' है। कठोपनिषद् के अनुसार यह 'गुहा' में स्थित है—गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीम् । "देव्यर्थवर्शीषं" में इसे 'गुहा' ही कहा गया है। गुहा का तात्पर्य 'हीं' से है। गुहा में प्रविष्ट होकर रहने का मतलब है कि वह शक्ति हीं से वाच्य है, वह 'हीं' बीज में प्रवेश किये हुए है, उसमें छिपी है। हीं उसका वाचक है, ऐसे ही, जैसे ओम् परात्पर शिव का वाचक है।

अचिन्त्य वैभव सम्पन्न होने के कारण इसे ही 'माया' (बीज) कहा जाता है। इसी को उपाधि बना कर शिव उत्पत्ति, स्थिति तथा लयादि प्रपञ्चन में समर्थ होता है। यह ईश्वर की मूल प्रकृति है। इसी को लक्ष्य करके—'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया कहा' गया है।^५

यह शक्ति प्राणिमात्र के हृदय में (विद्युत) लेखा की भाँति निरंतर जागती रहती है, इसलिए इसे 'हृल्लेखा' भी कहते हैं।^६ यह हृल्लेखा शिव

५. कामोयोनि: १४।

६. माया वाचिन्त्यवैभवात्।

७. गीता—४/६

८. हृदि लेखेव जागर्ति प्राणशक्तिरियं परा।

हृल्लेखा कथ्यते तस्मान्माया वाचिन्त्यवैभवात्।

अनया रहिता सर्वे निर्बोजा मंत्रराशयः।

अतस्तु सर्वमंत्राणामियमुद्बोधिनी मता।

(गोपालसुन्दरी से उद्धृत)

के साथ अभेदावस्था के कारण गीता में 'ईश्वर' पद से वाच्य है।^१ इस हृल्लेखा के माध्यम से ही परम शिव संसार की सभी जीवात्माओं को भ्रान्ति में डाले रहता है। यह ईश्वर की 'आत्ममाया' है, उसकी अभेद शक्ति है। ईश्वर की आत्ममाया होने के कारण ही इसे 'माया बीज' कहा जाता है।

इसी हीं शक्ति के विषय में श्रुति ने कहा है— 'इन्द्र अपनी माया शक्ति से विभिन्न रूप धारण करता है।^२ कठ की श्रुति भी इसी की ओर इंगित करती है— यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह^३ अर्थात् जो हृल्लेखारूप चित् शक्ति जीवोपाधि रूप परमेश्वर में है, वही परात्पर परमेश्वर में भी है। — क्योंकि, इस शरीर में जीवरूप में प्रविष्ट होने वाला परात्पर परमेश्वर ही है— अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि^४ 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविश्यत्'।^५

अर्थवृशीर्ष में शक्ति के हीं बीज को सभी कामनाओं को देने वाला— 'सर्वार्थसाधकम्' कहा गया है—

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।

अर्धेन्दुलसिंत देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्।^६

अर्थात्—

वियत् = 'ह'

ईकार = 'ई'

वीतिहोत्र = (अग्नि) 'र' तथा

अर्धेन्दु = अर्धचन्द्र (बिन्दु) युक्त = देवी का बीज 'हीं' सर्वार्थ साधक है।

उपनिषद् कहती है कि जो भी साधक (हृदय) गुहा में तथा परम व्योम अर्थात् महाकाश में निहित इस परा शक्ति (हीं) को जान लेता है, वह

१. ईश्वरः सर्वभूतानां हृददेशेऽर्जुन तिष्ठति।

ब्राम्यन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ गीता - १८/६१

२०. रूपं रूपं प्रति रूपो बभूवइन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । बृहदारण्यक २/५/१९

११. कठ-२/१/१०

१२. छान्दोग्य-६/३/२

१३. तैत्तिरोयोपनिषद्-२/६/१

१४. अर्थवृशीर्ष-१८

विद्वान् उस परम तत्त्व के साथ एकात्मकता (अहं ब्रह्मस्मि) के साथ ही सभी भोगों को भोगता है ।^{१५}

जिस प्रकार पराशक्ति के बिना शिव 'शव' है, निश्चेष्ट है, उसी तरह परतत्त्व शिव के वाचक समस्त मंत्र या नाम इस परा शक्ति 'हीं' के बिना निश्चेष्ट, निष्कल और निर्बीज हैं – अनया रहिताः सर्वे निर्बीजा मंत्रराशयः ।^{१६} यही कारण है कि पंचदशाक्षरी श्रीविद्या के – वाग्भव, कामकला तथा शक्ति इन तीनों कूटों के अन्त में 'हीं' बीज रखा जाता है ।^{१७}

हीं एवं पंचदशी विद्या

अथर्वशीर्ष^{१८} के अनुसार 'पंचदशी' जगन्माता अदिति की मूल विद्या है। इसका निर्माण 15 बीजाक्षरों से होता है। ये बीजाक्षर हैं –

कामः = क,	योनि = ए,	कमला = ई,
वज्रपाणि = ल,	गुहा = हीं, (वाग्भवकूट)	
ह, स, मातरिश्वा = क,	अभ्र = ह,	इन्द्र = ल,
गुहा = हीं, (कामकला कूट)		
स, क, ल, हीं (शक्तिकूट)।		

पंचदशी विद्या के दो रूप हैं – कादि और हादि। कादि विद्या की उपासना सांसारिक भोगों में अनुरक्त गृहस्थों तथा हादि विद्या की उपासना परमहंस संन्यासियों के लिए विहित है। अथर्वशीर्ष में प्रतिपादित पंचदशी विद्या कादि विद्या है।

१५. यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।

सोऽश्वनुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तैत्तिरीयोपनिषद् – २/१/१

१६. नरसिंहस्वामी (गोपालसुन्दरी) में उद्घृत

१७. हसकलहीं (वाग्भव कूट), हसकहल हीं (कामकलाकूट) सकल हीं (शक्ति कूट)

द्रष्टव्य – देव्यथर्वशीर्ष १४, शंकराचार्य (सौन्दर्यलहरी) ३२

तथा सौन्दर्यलहरी पर श्री रामकवि डिण्डम तथा नरसिंह स्वामी रचित गोपालसुन्दरी टीका ।

१८. कामो योनिः कमला वज्रपाणिः गुहा, हसा मातरिश्वाप्रमिन्द्रः ।

पुन गुहा, सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादि विद्या ।

ओम् । १४

आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी^{११} में निष्काम योगियों द्वारा संपूज्य हादि विद्या के स्वरूप का निर्वचन किया है। उनके अनुसार—

शिव = ह, शक्ति = स, काम = क, क्षिति = ल, हृल्लेखा = हीं, (प्रथम कूट), रवि = ह, शीतकिरण (चन्द्रमा) = स, स्मर (काम) = क, हंस = ह, शक्र (इन्द्र) = ल, हृल्लेखा = हीं (द्वितीय कूट) तथा परा (शक्ति) = स, मार (काम) = क, हरि (इन्द्र) = ल, हृल्लेखा = हीं (तृतीय कूट) ही हादि विद्या है।

शंकर ने कामना—कल्पवल्ली कादि विद्या का उद्घाटन करते हुए कहा है कि हादि विद्या के प्रथम तीन वर्णों के स्थान पर क्रमशः स्मर = क, योनि = ए तथा लक्ष्मी (शक्ति) = ई वर्णों को रखने से कादि विद्या का निर्माण होता है। इस कादि विद्या की साधना निःसीम भोगों के रसिक (गृहस्थ जन) करते हैं।^{१०} अर्थवशीर्ष का भी यही क्रम है।

नरसिंह स्वामिवर्य ने गोपालसुन्दरी टीका में कादि विद्या के शंकर प्रतिपादित स्मर, योनि और लक्ष्मी को क्रमशः कर्लीं, हीं तथा श्री मानकर इन्हें अष्टादशाक्षर 'सुन्दरीगोपाल मंत्र' के साथ संयुक्त करने की बात की है।^{११}

किन्तु, ज्ञात नहीं किस आधार पर नरसिंह स्वामी ने हादि लोपामुद्रा विद्या के 'हंस' का अर्थ 'लकार' किया है।^{१२} ऐसा करने से हादि—कादि विद्या के द्वितीय (कामकला) कूट के स्वरूप में अन्तर आ जायेगा। तब इस कूट का स्वरूप — ह स क ह ल हीं के बदले ह स क ल ल हीं हो जायेगा। यह परंपरागत नहीं है।

११. शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः,

स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।

अमी हृल्लेखाभि स्तिसृभिरवसानेषु घटिता,

भजन्ते वर्णा स्ते तव जननि नामावयवताम् ॥

२०. स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो

विधायैको नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।

जपन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः,

शिवानौ जुहन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः।

२१. वही, गोपालसुन्दरी टीका

२२. वही (रवि हकार, शीतकिरणः सकारः, स्मरः ककारः, हंसो लकारः, शक्रो लकारः...)

सौन्दर्यलहरी—३१

वही—३२

अथर्वशीर्ष में शंकर—प्रयुक्त 'हंस' के स्थान पर 'अभ्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। विद्वानों ने अभ्र का बीजाक्षर 'ह' माना है। शंकर ने 'अभ्र' के स्थान पर जो 'हंस' का प्रयोग किया है, उसका अर्थ भी विद्वानों ने 'ह' ही किया है।

किन्तु, गूढ़ बीज वर्णों में कौन—कौन से देव बीज निहित हैं, कौन वर्ण शिव—शक्ति के किस स्वरूप का वाचक है, यह परा शक्ति से अनुग्रहीत साधक ही जान सकते हैं। किन्तु, हंस या अभ्र का बीजाक्षर 'ह' है, ऐसा मानकर परंपरा से अलग होने का भय तो नहीं ही है।

आचार्य शंकर ने सौन्दर्य लहरी में पहले हादि विद्या का उद्घाटन किया, फिर कादि का। इसके विपरीत त्रिपुरोपनिषद् में— कामो योनिः कमला वत्रपाणि.... के रूप में प्रथम कादि विद्या का उद्घाटन कर, फिर अगले ही मंत्र द्वारा हादि विद्या का उद्घाटन किया है। इस उपनिषद् के अनुसार पूर्वमंत्र—वर्णित कादि विद्या के छठे, सातवें तथा वहिसारथि अर्थात्, मातरिश्वा (वायु) बीजों को इसके प्रथम तीन बीजों के स्थान पर क्रमशः रख देने से कादि विद्या को हादि के रूप में परिणत किया जा सकता है।^{२३}

इस निर्देश के अनुसार कादि का छठा बीज = 'ह', सातवां 'स' तथा वहिसारथि (मातरिश्वा) बीज 'क' को कादि विद्या के प्रथम तीन स्थानों पर रखने से (क के स्थान पर ह, ए के स्थान पर स तथा ई के स्थान पर क) हादि का स्वरूप — (हसकलहीं) — हो जाता है। सारांशतः, कादि और हादि विद्याओं के स्वरूप निम्नांकित हैं—

कादि	\leftrightarrow	हादि
क ए ई ल हीं	(वाग्भव कूट)	ह स क ल हीं
ह स क ह ल हीं	(कामकला कूट)	ह स क ह ल हीं
स क ल हीं	(शक्ति कूट)	स क ल हीं।

त्रिपुरोपनिषद् के अनुसार भी हादि विद्या की उपासना अमृतत्वं (मोक्ष) के उपासक (परमहंस ज्ञानी जन) ही करते हैं— तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते।

२३. षष्ठं सप्तममथ वहिनसारथिमरस्या मूलत्रिकमादेशयन्तः।
कथ्यं कवि कल्पकं काममीशं तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते ॥...९

कामना बीज-कलीं

परम शिव की चिदानन्दलहरी का वाचक तृतीय शक्ति बीज "कलीं" है। इस बीज में क्, ल्, ई और अनुस्वार ये चार वर्ण हैं। इनमें से क वर्ण काली, काम तथा कृष्ण, ल इन्द्र तथा पृथ्वी, ई शक्ति एवं तुष्टि तथा अनुस्वार शिव, कल्याण आदि के वाचक हैं। किन्तु, तंत्र साधना में मुख्यतः कलीं को काली, काम और कृष्ण का बीज माना जाता है।^{२४}

क अर्थात् काम 'ब्रह्मसू' कहा जाता है— ब्रह्म की प्रथम कामना या इच्छा का प्रतीक— 'कामः इच्छा कामना इत्यर्थः।' ब्रह्म की प्रथम कामना—'एकोऽहं बहु स्याम्' है। इसके बाद 'स ऐच्छत् जाया मे स्यात्' मेरी पत्नी हो। तब वह स्त्री और पुरुष संपृक्त (संमिलित) अर्धनारीश्वर रूप में हुआ। फिर उसने अपने उस 'अर्धनारीश्वर' रूप को दो भागों में विभक्त किया— एक स्त्री और दूसरा पुरुष।

क्योंकि, उसने उक्त दो भाग अलग—अलग कर लिए, इसलिए वह अपने को अधूरा (अर्धबृगलम्) ही महसूस करता है। और, जब तक इसके ये दोनों भाग (स्त्री—पुरुष) एक नहीं होते, वह अपने को अधूरा ही महसूसता है। वस्तुतः, स्त्री के बिना पुरुष 'आकाश' की तरह शून्य है। यह आकाश स्त्री से ही पूर्णत्व को प्राप्त होता है। स्त्री—पुरुष के इसी (संपृक्त) रूप या भाव से मनुष्य (आदि) की उत्पत्ति हुई।^{२५}

ईश्वर की यह कामना शक्ति 'कलीं सृष्टि—बीज भी है। यही उसकी (ईश्वर की) प्रकृति भी है—या स्तुः सृष्टिराद्या प्रकृतिरिति। कालिदास इस 'प्रकृति' को पृथ्वी कहते हैं, क्योंकि ईश्वरीय काम (कामना) इस प्रकृति का सहारा लेकर ही साकार होती है— प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि

२४. कः कामदेव उदिदस्तोऽप्यथवा कृष्ण उच्यते,

ल इन्द्रः ईः तुष्टिवाची सुखदुःखप्रदं च मम।

कामबीजार्थं उक्तं स्ते तव स्नेहान्महेश्वरि।

योगकर्णिका बीजकोश—१८—१९

२५. स दिवतीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ।

स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्। ततः पति श्च पत्नी चाभवताम्।

तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवक्यः। तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत

एव तां समभवत्। ततो मनुष्या अजायन्त।—

बृहदारण्यक— १/४/३

पुनः पुनः ।^{२६} तांत्रिक उपासना में पृथ्वी (प्रकृति) का बीज 'ल' है। सृजन की कामना (क) के पश्चात् उसके लिए आधारभूत, या उस काम बीज को अंकुरित करने वाली शक्ति पृथ्वी (ल) की अनिवार्यता है। इसीलिए 'कर्ली' इस कामबीज में क के अनन्तर ल का प्रयोग किया गया है।

परम शिव के काम (क) बीज का रोपण पृथ्वी 'ल' में कर दिया गया। लेकिन, जब तक काम बीज में अंकुरण की शक्ति न हो, सृजन नहीं हो सकता। सृजन के लिए पृथ्वी (ल) के गहन तम में पड़े हुए कामबीज में स्पन्द की आवश्यकता है, उष्मा की जरूरत है। यह कार्य उस परशिव की अपनी अभिन्न शक्ति (ई) ही कर सकती है — 'संभवाम्यात्ममायया' ।^{२७} ईश्वर अपनी मायाशक्ति (ई) के बिना अंकुरणादि सृजन क्रिया में समर्थ नहीं हो सकता ।^{२८} काम बीज का पृथ्वी के साथ संयोजन होने पर भी इसके स्पन्दन या अंकुरणादि के लिए शक्ति की आवश्यकता है, इसी तथ्य को ध्यान में रखकर क् ल के आगे ई बीज रखा गया है।

किन्तु अंकुरित (काम) बीज में भी जब तक अनिर्देश्य प्राणन—शक्ति का संचार नहीं होता, जब तक वह सफल नहीं हो सकता। अनुस्वार ही वह ईश्वर या प्राणन शक्ति है, जो क ल और ई में चैतनता का संचार करती है। इस तरह काम (क), आधार (पृथ्वी), ल अंकुरण—शक्ति (ई) और इन तीनों में चैतन्य संचारित करने वाले शिव—बीज (अनुस्वार) को मिलाकर संपद्यमानार्थक, संभवनार्थक या सृष्ट्यर्थक काम बीज 'कर्ली' की निर्मिति होती है।

कर्ली ब्रह्म का संकल्प बीज है, ब्रह्मामय है। अतः संकल्प—ब्रह्म 'कर्ली' की उपासना करने वाला साधक जो भी संकल्प करता है, जहां तक संकल्प की गति है, वहां तक उसकी स्वेच्छागति होती है ।^{२९}

२६. गीता ९/८

२७. 'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया' । वर्ही ४/६

२८. 'शिवः शक्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्' ।

-न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि । सौ० - ।

२९. यावत् संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति, यः संकल्पो ब्रह्मेत्युपासते ।

छान्दोग्योपनिषद्, अध्याय-४, -४ मंत्र-३

महालक्ष्मी बीज 'श्री'

परा शक्ति का चतुर्थ महान् बीज 'श्री' है। श्रीं महालक्ष्मी बीज है। महालक्ष्मी के दो स्वरूप हैं — श्री और लक्ष्मी। शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार सहस्रशीर्ष, सहस्रपाद, जिसके एकपाद में सारा ब्रह्माण्ड है और तीन पाद ब्रह्माण्ड से परे अमृतमय हैं, उस नारायण पुरुष की दो पत्नियां हैं—पहली श्री और दूसरी लक्ष्मी।^{३०}

यजुर्वेद में उल्लिखित श्री और लक्ष्मी के स्वरूप को स्पष्ट किया है परम मेधावी विद्वान् महीधर ने। उनके अनुसार 'जिसके द्वारा व्यक्ति सभी लोगों का आश्रय बनता है, वह श्री है—

'यया सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः'

अथवा जिसके द्वारा व्यक्ति संपत्तिशाली बनता है, वह श्री है—

'श्रीयते अनया श्रीः सम्पदित्यर्थः'

और, जिसके द्वारा वह लक्षित किया जाता है, अर्थात् दूसरों का ध्यान आकर्षित करता है, वह लक्ष्मी है। यहां लक्ष्मी सौन्दर्य का पर्याय है—

यया लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः, सौन्दर्यमित्यर्थः।^{३१}

तैत्तिरीय आरण्यक^{३२} में — श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते..... इस मंत्र के श्रीः के स्थान पर 'हीश्च ते लक्ष्मीश्च ते' पाठ है। वहां 'ही' को लज्जाभिमानी देवता तथा लक्ष्मी को ऐश्वर्याभिमानी देवता माना गया है—हीर्लज्जाभिमानी देवता, लक्ष्मीरैश्वर्याभिमानी देवता।^{३३}

तात्पर्य यह कि 'श्री' बीज एक ओर संपत्ति की स्वामिनी श्री देवी का वाचक है, तो दूसरी ओर सौन्दर्य की देवी लक्ष्मी का और तीसरी ओर शालीनता की देवी हीं या लज्जा का।

यह महालक्ष्मी सर्वसंपत्स्वरूपिणी, संपत्ति की अधिष्ठात्री, वृद्धिस्वरूपा, वृद्धिदा, क्रोध—हिंसावर्जिता (हीं स्वरूपा) सत्स्वरूपा,

३०. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे ...

शुद्धय० ३१/२२

३१. वही, महीधर कृत भाष्य

३२. ३/१३/६

३३. वही, सायणभाष्य

परमार्थप्रदा तथा सर्वदा प्रसन्नस्वरूपा है। यह देवी बैकुंठ में महालक्ष्मी, क्षीरसागर में लक्ष्मी, इन्द्र के यहां स्वर्गलक्ष्मी राजाओं के यहां राजलक्ष्मी, सदगृहस्थों के गृह में गेहलक्ष्मी और गृहदेवता आदि के रूप में स्थित है। चन्द्रमा की कान्ति यही है तथा कमलों में कान्ति और कोमलता के रूप में यही विद्यमान है। यह लक्ष्मी ही कला और सौन्दर्य की देवी है। इसके बिना सारा संसार भ्रमवत् निरर्थक है, असार है, सारा संसार जीवित होते हुए भी मृत है।^{३४}

श्रीं बीज में शकार, रकार, ईकार तथा बिन्दु (अनुस्वार) ये चार वर्ण हैं। इनमें श महालक्ष्मी का, र संपत्ति का, ई तुष्टि का वाचक तथा बिन्दु दुःखहरार्थक है।^{३५} तात्पर्य यह कि इस 'श्रीं' बीज के साधक को महालक्ष्मी इतनी लौकिक-अलौकिक संपत्ति और शोभा प्रदान करती हैं कि वह पूर्णकाम और तुष्ट हो जाता है।

कमलवासिनी महालक्ष्मी का बीज है 'श्रीं'। इसके पूर्ण मंत्र का उद्घाटन देवीभागवत में किया गया है—

लक्ष्मीर्याकामवाणीडेता कमलवासिनी,
वैदिको मंत्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयान्वितः।^{३६}

अर्थात् लक्ष्मी (श्रीं), माया (हीं), काम (कलीं), वाणी (ऐं), डे (ए), ता (कमलवासिनी शब्द में तादर्थ में डे) अर्थात् चतुर्थी विभक्ति लगाकर (कमलवासिन्यै) तथा उसके बाद 'स्वाहा' शब्द रखने से लक्ष्मी के मंत्र (श्रीं हीं कलीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा) — का निर्माण होता है।

देवीभागवत के इस श्लोक में — डेता — का अर्थ 'तादर्थ चतुर्थी है।' 'डे' चतुर्थी विभक्ति के एकवचन का प्रत्यय है।^{३७} इसमें से डे का लोप हो

३४. विशेष के लिए देखें —

देवीभागवतपुराण — ९/४२

३५. महालक्ष्म्यार्थकःशः स्याद् धनार्थं रेफ उच्यते ।

ईस्तुष्टार्थं परो नादो बिन्दु दुःखापहारकः ।

योगकार्णिका—९७.

लक्ष्मीदेव्या बीजं चैतत् तेन देवीं प्रपूजयेत् ॥

३६. देखे भागवतपुराण — ९/४२

३७. स्वौजसमौद्धष्टाम्याम्भिसृद्धे.म्याम्भ्यसृद्ध.सोसाम्भ्योस्सुप् ।

अष्टाध्यायी — ४/१/२

जाता है^{३८} तब केवल 'ऐ' शेष रहता है। यह 'ऐ' शक्ति बीज है। यह 'ऐ' नमः शब्द का भी पर्याय है^{३९}। स्वाहा, स्वधा नमः आदि के योग में (डे) चतुर्थी विभक्ति होती है।^{४०} उक्त लक्ष्मीमंत्र में कमलवासिनी शब्द से डे का योग करने से 'कमलवासिन्यै' बनता है। इस श्लोक द्वारा मंत्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द के प्रयोग का निर्देश है। इस स्वाहा शब्द का प्रयोग अन्य किसी अर्थ में नहीं अपितु 'नमः' के अर्थ में ही हो, इस तथ्य को सुनिश्चित करने के लिए डे के साथ^{४१} तदर्थ में ता का (डेता कमलवासिनी) प्रयोग किया गया है।

'स्वाहा' शब्द का अर्थ (स्वा+हा) अपना सर्वस्व त्याग (ओहाक् त्यागे) या सर्वस्व समर्पण भी है। इस दृष्टि से मंत्र का अर्थ 'कमलवासिनी के लिये मैं अपना सब कुछ समर्पित करता हूँ' भी होगा।

ऐं हीं कलीं और श्रीं शक्ति—प्रणव बीज हैं। मुख्यतः ये बीजमंत्र क्रमशः महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी और श्री (समृद्धि और कान्ति की देवी) की साधना में प्रयुक्त किये जाते हैं। किन्तु, भावना—भेद से ये बीजमंत्र विभिन्न देवी—देवताओं की साधना में भी प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरण के लिए कलीं बीज का प्रयोग कामदेव, कृष्ण, काली और पराशक्ति आदि की उपासना में किया जाता है।

वाग्बीज 'ऐं'

शक्ति बीज 'ई' में निहित पराशक्ति का बीज "ऐं" है। इसमें बिन्दु परशिव का वाचक है और 'ऐ' पराशक्ति का। इस बीज का निर्माण शक्ति वाचक बीज ई में भाव प्रत्यय (घञ्)^{४२} लगाने से होता है 'ईकारस्य भावः ऐकारः' अर्थात् ई में रहने वाली शक्ति का नाम ऐं है।

३८. वही, लशक्वतद्विते १/३/८ तस्य लोपः १/३/९

३९. प्रणवो बीजमाख्यातं नमः शक्तिरुदीरिता इत्यादौ नमः पदस्य च

शक्तिपदार्थताप्रतिपादनात् एकारेण च चतुर्थीकवचने डे इत्यस्योक्तिः।

सैन्दर्यलहरी के प्रथम श्लोक पर गोपालसुंदरी टीका

४०. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड् योगाच्च ॥

४१. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक – १४५) अष्टाध्यायी – २/३/१६.

४२. भावे— अष्टाध्यायी – ३/३/१८

गत्यर्थक इण् धातु में 'भावे' सूत्र से भावार्थक घञ् प्रत्यय और वृद्धि करने से 'ऐं' बनता है। यह 'ऐं' सृष्टि रूपिणी भगवती सरस्वती का वाचक है— ऐंकारी सृष्टिरूपिण्यै ...

'शिव' शब्द में शकार, इकार, वकार तथा अकार ये चार वर्ण हैं। इनमें से शकार तथा वकार शिव के वाचक हैं तथा इकार व अकार शक्ति के। इ तथा अ के क्रम बदल देने से ये अ तथा इ हो जाते हैं। इन दोनों वर्णों की संधि से 'ए'^{४३} बीज का निर्माण होता है। यह 'ए' भगवान् शंकराचार्य द्वारा सौन्दर्यलहरी में उद्घाटित कामकला बीज है।^{४४} यह कामकला बीज ही पूर्ववत् भाव में 'ऐ' हो जाता है। इसमें पर शिव वाचक बिन्दु लगा देने से 'ऐ' बीज की अभिव्यक्ति होती है।

यह संपूर्ण जगत् इसी ऐं शक्ति द्वारा अभिधेय है, वाच्य है। क्योंकि यह जो कुछ भी है, वह समस्त 'ऐं' ही है। इस तथ्य को ही यम ने नचिकेता से—एतद् वै तत्^{४५}— कह कर उद्घाटित किया था। एतत् वै तत् का सामान्य अर्थ है— यह सब कुछ जगत् वह (शक्ति) ही है। किन्तु 'एतत् वै तत्' में परा शक्ति 'वाक्' का स्वबीज 'ऐं' छिपा हुआ है। इसका उद्घाटन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

एत् (ए)	अत् (अ)
वै (निश्चय)	तत् (वह) है।

यहां एत् तथा अत् में तकार 'तपरस्तत्कालस्य'^{४६} के अनुसार केवल ए और अ को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार एतत् वै तत् का अर्थ हुआ —यह सब कुछ ए और अ है। अब, इनका क्रम उलट कर संधि कर देने से 'ऐ' बीज का उद्घाटन होता है। इसमें पर शिव वाचक बिन्दु लगाने से 'ऐं' बीज निर्मित होता है।

एत् और अत् का क्रम न बदलने पर भी इस बीज की सिद्धि होती है। ए का भाववाचक 'ऐ' बना लेने के पश्चात् परशिव वाचक अकार को बिन्दु रूप मानकर इस बीज का निर्माण किया जा सकता है।

४३. अदेहगुण — वही ६/१/८७

आदगुणः — वही १/१/२

४४. सौन्दर्यलहरी — १९ वां श्लोक

४५. कठोपनिषद् — २/१/७

४६. अष्टाध्यायी — १/१/७०

कुंजिका स्तोत्र में 'ऐ' स्वरूपा भगवती को सृष्टिरूपा कहा गया है^{४७} क्योंकि नाम और रूप 'इदं नाम अयं रूपः' में पदार्थों की अभिव्यक्ति ही 'सृष्टि' है और ऐसी अभिव्यक्ति भगवती 'वाक्' द्वारा ही संभव है।^{४८}

ऋग्वेद के वागाभृणी सूक्त में^{४९} 'य ई श्रुणोति' से ई बीज से बोध्य ऐ बीज की ओर ही इंगित किया गया है वहां भगवती 'वाक्' अपने स्वरूप का स्वयं निर्वचन करती हुई कहती हैं—

'परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव'

अर्थात् 'मैं आकाश और पृथ्वी से परे हूँ। यह सारी सृष्टि मेरी महिमा का प्रस्पन्द है।'

वास्तव में, ऋग्वेद का वागाभृणी सूक्त भगवती पराशक्ति 'वाक्' की महिमा का प्रतिपादक अद्भुत सूक्त है।^{५०}

भगवती वाग्देवी के बीज नाम 'ऐ' की महिमा का प्रतिपादक एक कथानक देवीभागवत में भी आया है, जिसके अनुसार एक व्याध के बाण से आहत वन वराह की रक्षा तपस्यारत ब्राह्मण सत्यव्रत के मुख से अकस्मात् निकले 'ऐ, ऐ' इस अशुद्ध सारस्वत बीज से हुई थी।^{५१} देवीभागवत के अनुसार ही भयभीत व्यक्ति द्वारा 'ऐ' 'ऐ' जैसे बिन्दुविहीन सारस्वत मंत्र के उच्चारण से भी रक्षा होती देखी जाती है।^{५२} इस प्रकार भगवती वाग्देवी के बीज 'ऐ' के अस्पष्ट, अशुद्ध और अज्ञातार्थ उच्चारण से भी भयक्रांत की रक्षा यदि संभव होती है, तो इसके शुद्ध और भावनापूर्ण जप से किस भय की निवृत्ति नहीं हो सकती?

आचार्य शंकर ने भी सारस्वत बीज के इस प्रभाव का वर्णन अपने

४७ ऐकारी सृष्टिरूपायै ...

४८ सर्व शब्देन भासते—१

४९ १०/१२५/८

५० ऋग्वेद — १०/१२५/८

५१. द्रष्टव्य — देवीभागवत — ३/११

५२. ऐ ऐ इति भयातेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने,
बिन्दुविहीनमपीत्युक्तं वांच्छितं प्रददाति वै।

वाक्यपदीयम् — १/१२३

— वही ३/९/४३

‘लघुस्तव’ नामक स्तोत्र में किया है।^{५३}

वस्तुतः हीं कर्लीं श्रीं आदि देवी बीजों की आधारभूत मातृका ‘ई’ का भावात्मक शक्ति बीज ऐं ‘एतद् वै तत्’ इस कठ श्रुति के प्रामाण्य से निखिल ब्रह्माण्ड की कारण भगवती पराशक्ति का बोधक बीज है। इसकी उपासना से ब्रह्माण्ड की सभी देवी और भौतिक शक्तियों की उपासना संपन्न मानी जाती है। इसीलिए देवीमाहात्म्य के बीजभूत ‘तंत्र दुर्गासप्तशती’ के सभी बीज मंत्रों में ‘ऐं’ बीज का संयोजन है।

भगवती पराशक्ति का यह ‘ऐं’ बीज सारस्वत बीज होने के कारण समस्त लौकिक एवं परालौकिक विद्याओं के उपार्जन में अद्भुत सामर्थ्य रखता है।

बधूबीज ‘स्त्रीं’

स्त्रीं बधूबीज है। इसमें सकार दुर्गात्मारणवाच्य, अर्थात् दुर्गम स्थितियों से रक्षा करने वाली शक्ति दुर्गा का वाच्य है। भवसागर से तारने वाला रकार समस्त मंत्र के अर्थ का, ईकार महामाया तथा बिन्दु दुःख-हर्ता का वाचक है। अर्थात् (स्त्रीं) स्त्रीं (बधू) के रूप में ही वह महेश्वरी जीव को इस संसार सागर से पार करती है। अपने आप को विश्व के रूप में परिणत करने के लिए ‘शिव की पत्नी’ का रूप धारण करने वाली भगवती उमा हैमवती ही इस बधूबीज ‘स्त्रीं’ की परम वाच्य हैं। इसी बधूबीज ‘स्त्रीं’ का सहारा लेकर पुंस्तत्त्व आत्मविस्तार करता है और अपने आपको अक्षर-अमृत और शाश्वत बनाता है। इसी बीज का आश्रय लेकर वह संतान-तन्तु का विस्तार करता है, अपने आप को प्रणव अर्थात् नित्य नूतन बनाता है—‘आत्मा वै जायते पुत्रः’ से इसी तथ्य को कहा गया है।

५३. दृष्टवा संप्रमकारिवस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं,
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे,
वाचः सूवित्सुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वकत्राम्बुजात् ॥

यह वही बीज है, जिसकी कामना परम शिव ने सबसे पहले की थी— स द्वितीयमैच्छत्, जाया मे स्यात् । यह वही तत्त्व है, जो नौ या दस मास^१ तक अपने पति (शिव) को अपने गर्भ में पालकर 'जाया' इस महामहिमाशाली पद को सुशोभित करती है— सो कामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेय (बृहदारण्यक—१ / ४ / १७) । पत्नी को 'जाया' कहा ही इसलिए जाता है कि वह पति को पुनः नया जन्म (संतान के रूप में) देती है ।

'जाया', क्योंकि गर्भ के रूप में पति का पालन—संवर्धन करती है, इसलिए— पति का भी कर्तव्य बनता कि वह उसका पालन, पोषण, संवर्धन, सत्कार और सम्मान करे—सा भावयित्री भावयितव्या भवति^२ श्रुति का यही तात्पर्य है ।

स्त्रीं बीज की उपासना करने वाले साधक का गृहस्थ जीवन सुख, शान्ति और समृद्धिपूर्ण होता है और जीवनपर्यन्त पति—पत्नी अभेदभाव से सामंजस्यपूर्ण समरसता का आस्वाद करते हैं ।

इनके अतिरिक्त अक्षमालोपनिषद् में अ से लेकर क्ष पर्यन्त वर्णमाला में आये सभी वर्णों के अर्थ एवं गुण—संक्षेप में दिये गये हैं, जिनसे अनगिनत बीजमंत्रों की रचना होती है । इन मातृकाओं से निर्मित बीजमंत्रों की उपासना से मातृकाओं मे निहित निम्नांकित गुणों के अनुरूप सिद्धियां प्राप्त होती हैं—

अं	=	सर्वव्यापक, मृत्युंजयता,
आं	=	आकर्षण एवं सर्वव्यापकता
इं	=	पुष्टिकर एवं क्षोभकर,
ईं	=	वाक्‌प्रसाद एवं निर्मलता
उं	=	सर्वबलप्रद एवं सार,

१. योषा वाव गौतमाग्निः इति तु पंचम्यामाहुता वापः पुरुषवचसो भवन्तीनि उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते । छान्दोग्य—५ / ९ / १
२. सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भ बिभर्ति... ऐतरेयोपनिषद्—२ / ३
पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ।
तस्यां पुन नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥ मनुस्मृतिः ९ / ८

ऊं	=	उच्चाटनकर एवं दुःसह
ऋं	=	संक्षोभकर एवं चंचलता,
ऋं	=	संमोहन एवं उज्ज्वलता
लृं	=	विद्वेषण एवं मोहकता,
लृं	=	मोहन
एं	=	सर्ववशंकर,
ऐं	=	शुद्ध, सात्त्विक एवं पुरुषवशंकर
ओं	=	नित्य, शुद्ध एवं अखिल वाङ्मयता,
ओं	=	सर्व वाङ्मयता एवं वशंकर
अं	=	गजादि वशंकर एवं मोहन,
अः	=	मृत्युनाशकर एवं रौद्र स्वरूप।
कं	=	सर्व विषहर एवं कल्याणप्रद,
खं	=	व्यापक एवं सर्वक्षोभकर
गं	=	सर्व विघ्नशमन एवं महत्तर,
घं	=	सौभाग्यप्रद, स्तंभनकर
डं	=	उग्र एवं सर्वविषनाशक,
चं	=	अभिचारघ्न एवं क्रूर
छं	=	भीषण— भूतनाशकर
जं	=	दुर्धर्ष एवं कृत्यादिनाशकर
झं	=	भूतनाशकर
ञं	=	मृत्युप्रशमन
टं	=	सुभग, सर्वव्याधिहर
ठं	=	चन्द्रस्वरूप/चन्द्रबीज
डं	=	विषध्न, शोभन, गरुणात्मक,
ढं	=	सर्वसंपत्कर, सुभग

णं	=	सर्वसिद्धिप्रद, मोहन
तं	=	धनधान्यप्रद, संपत् दायक
थं	=	धर्मप्राप्तिकर, निर्मल
दं	=	पुष्टि—वृद्धिप्रद, निर्मल
धं	=	विष—ज्वरघ्न, विपुल,
नं	=	भुक्ति—मुक्तिप्रद
पं	=	विष—विघ्ननाशक, भव्य
फं	=	अणिमादिसिद्धिप्रद, ज्योतिस्वरूप
बं	=	सर्वदोषहर, शोभन,
भं	=	भूतप्रशान्तिकर, भयंकर
मं	=	विद्वेषी एवं मोहन
यं	=	सर्वव्यापक, पावन
रं	=	दाहकर, विकृत
लं	=	विश्वभर, भासुर
वं	=	सर्वव्यापन एवं संतुष्टिकर,
शं	=	सर्वफलप्रद, निर्मल
षं	=	धर्मार्थकामप्रद, धंवल,
सं	=	सर्वकारण, सर्व वर्णिक
हं	=	सर्ववाङ्मयस्वरूप—निर्मल,
ळं	=	सर्वशक्तिप्रद, प्रधान
क्षं	=	परात्परतत्त्वज्ञापक, परज्योतिस्वरूप *



* द्रष्टव्य — अक्षमालोपनिषद्

सर्वमस्मिं समाहितम्

छान्दोग्य में एक सुन्दर आख्यान है। 'एक बार मृत्यु से भयभीत देवताओं ने उससे बचने के लिए ऋग्, यजुष् तथा सामवेद (प्रतिपादित विद्या अर्थात् साधन—बहुल कर्मकांड) में प्रवेश किया। उन्होंने वैदिक मंत्रों द्वारा अपने को कवचित् कर (ढक) लिया। उन्हें ऐसा लगा कि अब मृत्यु उन्हें नहीं देख पायेगी। लेकिन, यह उनका भ्रम था। वे (वैदिक मंत्रों के आधार पर यज्ञादि का अनुष्ठान करके भी) मृत्यु से बच नहीं सके। जिस तरह मछुआरा जल में छिपी हुई मछलियों को भी देख लेता है, उसी प्रकार साम, यजुष् और ऋग्वेद (के अनुष्ठानों) में अपने आप को छिपा और सुरक्षित मान रहे देवों को भी मृत्यु ने देख लिया।

देवताओं को जैसे ही यह अवगत हुआ कि मृत्यु ने उन्हें देख लिया है, (उन वैदिक अनुष्ठानों को छोड़) स्वर अर्थात् ओम् (बीज) की उपासना में लग गये। इससे वे मृत्यु से बचकर अमृत और निर्भय हो गये।^१

इस आख्यायिका का आध्यात्मिक अर्थ है। वह यह कि बाह्य साधन निरपेक्ष—नामोपासना ही सर्वोत्तम है। यह नामोपासना उपास्यदेव के बीजनामों का जप और उनमें उपास्य की भावना ही है।

यहाँ उल्लेखनीय केवल यह है कि साधन—बहुल वैदिक अनुष्ठानों को छोड़कर वेदत्रयी के सार बीजरूप, साधन—निरपेक्ष ओम् की साधना से ही देव अपने लक्ष्य को पाने में समर्थ रहे। वेदत्रयी—प्रतिपादित साधना न्यूनता से ग्रस्त थी, इसलिए मृत्यु उन्हें देखने में समर्थ रही। वस्तुतः, न्यूनता या अपूर्णता ही मृत्यु है और पूर्णता या भूमात्व ही अमरत्व है। अल्पता ही दुःख है, मृत्यु है और भूमात्व या पूर्णता ही सुख है, अमरत्व है।^२

१. छान्दोग्य — १/४/१-५

२. यो वै भूमा तत्सुखं नाल्ये सुखमरितं ।

छान्दोग्य — ७/२३/१

परमात्मा के बीज नाम ओम् द्वारा उसकी उपासना बाह्य साधन निरपेक्ष होने के कारण सर्वश्रेष्ठ उपासना है।^३ इसी प्रकार विभिन्न दैवी शक्तियों की उनके वाचक बीज नामों से की गई उपासना मूर्त प्रतीक—सापेक्ष उपासना से श्रेष्ठ है।

किसी शास्त्रीय और उत्तम आलंबन को ब्रह्म या अपने साध्य इष्ट का स्वरूप मानकर अपने मन को अविच्छिन्न (रूप) से उसमें लगा देना ही प्रतीकोपासना है। प्रतीकोपासना के लिए किसी मूर्त रूप जैसे मूर्ति आदि या अमूर्त (नाम) का आलंबन लिया जाता है। प्रायः सगुण परमेश्वर की उपासना के लिए साकार मूर्ति आदि तथा निगुर्ण परमेश्वर की उपासना के लिए नाम का आलंबन लिया जाता है। ये नाम और रूप दोनों ही ईश्वर के प्रतीक हैं।

परमात्मा के पुर इस शरीर में दहराकाषा स्थित ब्रह्म के अतिरिक्त उसकी सेवा में जुटे असंख्य देवी—देवता तथा पंचभौतिक संसार आदि सब कुछ है। कर्मद्वियां, ज्ञानेन्द्रियां, प्राण, मनस् बुद्धि, चित्त, अहंकार इन सब का संचालन जिनके द्वारा हो रहा है, वे सब देवी—देवता अपनी समस्त साजसज्जा के साथ इस शरीर में विद्यमान हैं। अनेक नाम—रूप वाले देवी—देवता इस मानव शरीर में अपने सूक्ष्म रूप में ही अपनी समस्त महिमाओं के साथ स्थित हैं। उन सबके नाम और रूप पृथक्—पृथक् हैं। वे अपने नाम और रूप से संबोधित और ध्यायित होकर साधक को यथेष्ट फल प्रदान करते हैं।

विराट् और व्यापक रूप से ब्रह्माण्ड और सूक्ष्म रूप से इस शरीर में स्थित देव—शक्तियों की उपासना के अनेक प्रकार प्रचलित हैं। किन्तु, उनके विराट् रूप की उपासना सामान्य साधकों के लिए प्रारंभ में दुष्कर है। विश्वोत्तीर्ण विराट् ब्रह्म की साधना सुगम नहीं है। इसीलिये महर्षियों ने प्रतीक साधना द्वारा विराट् तक पहुंचने की विधि आविष्कृत

^३. ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽमिधानम्—तथा चार्चादिवत् परस्यात्मनः प्रतीकं सम्पद्यते। एवं नामत्वेन प्रतीकत्वेन च परमात्मोपासनसाधनं श्रेष्ठम्।

शांकरभाष्य—(छान्दोग्य—१/१/१)

की। 'आदित्य ब्रह्म है', 'आकाश ब्रह्म है' आदि श्रुति वाक्यों द्वारा इसी तथ्य को सामने लाया गया है।

एक छोटी सी मूर्ति में विराट् विष्णु की परिकल्पना और उसके बाद अपने हृदय के भीतर उस विराट् की भावना करके उसका साक्षात्कार करना सबसे सरल है। इसी प्रकार परात्मा के अनन्त नाम या वाचक पदों में से सबसे प्रिय और सबसे सरल नाम का चयन कर उसे संबोधित करना और उसके गुणों का विन्तन करना नामोपासना है।

परात्मा के अनन्त नामों में से प्रणव या उद्गीथ 'ओम्' नाम उसके सबसे नजदीक और साधक के लिए सबसे सरल है। 'ओम्' उसके इस नाम में समस्त विश्व के नाम छिपे हुए हैं। ओम् नाम विश्व के प्रत्येक नाम में उसी तरह व्याप्त है, जैसे विश्व के समस्त रूपों में वह (परात्मा) व्याप्त है।

'ओम्' यह नाम विश्व के समस्त नामों का 'बीज' है। आचार्यों ने ओम् बीज नाम को 'तार या तारक—बीज' कहा है। वह इसलिए कि इस ओम् बीज द्वारा समस्त नाम बीजों का अतिक्रमण करके निर्बीजावस्था का साक्षात्कार किया जा सकता है।

जिस प्रकार हृदयाकाश में स्थित परमात्मा—ब्रह्म के वाचक बीज नाम ओम्, है उसी प्रकार इस शरीर के करोड़ों अवयवों के अधिष्ठात्री दैवी शक्तियों के भी अपने—अपने बीज नाम हैं। जिस प्रकार वह परात्मा अपने प्रिय ओम् नाम से संबोधित होकर साधक की समस्त कामनाओं की पूर्ति करके उन्हें पूर्णकाम या आप्तकाम कर देता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्गत विभिन्न दैवी शक्तियां अपने—अपने प्रिय बीजनामों से संबोधित और साधित होकर अपनी शक्ति के अनुसार साधकों की कामनाओं की पूर्ति करती हैं।

इसके साथ ही यह भी तथ्य है कि जिस प्रकार उस परतत्त्व का साक्षात्कार अपने अन्दर उसकी भावना करने से अपने अन्दर ही होता है, उसी प्रकार विभिन्न दैवी—शक्तियों का साक्षात्कार भी साधक को अपने अन्दर ही होता है। तात्पर्य यह कि ब्रह्म—साधना तथा अन्य दैवी—देवताओं की साधना के लिए बाह्य साधनों की अनिवार्यता नहीं है। वास्तव में, विराट् की साधना बाह्य साधना है। इसके लिए बाह्य

साधन (यज्ञ-याग के लिए अपेक्षित साधनों) की जरूरत होती है। लेकिन, सूक्ष्म आन्तर-साधना के लिए बाह्य-साधनों की जरूरत नहीं होती।

वैदिक काल से प्रचलित यज्ञ आदि विराट् की साधनाएँ हैं। इसके विपरीत उपनिषत्प्रतिपादित आत्मोपासना साधन-निरपेक्ष आन्तरिक साधना है। बीजनामों या बीजाक्षरों की साधना में बाह्य-साधनों की आवश्यकता, (कम से कम अनिवार्यता) नहीं है। उदाहरण के लिए यदि देवी माहात्म्य दुर्गासप्तशती के सात सौ मंत्रों का पाठ और तदनुसार अपेक्षित संख्या में हवन आदि द्वारा देवी की साधना की जाती है, तो उसमें समस्त बाह्य विधियों का पालन जरूरी है। किन्तु, यदि भगवती दुर्गा की उपासना उनके बीजनामों से की जाती है, तब बाह्य-साधनों की अनिवार्यता नहीं रहती।

बाह्य-साधन-सापेक्ष उपासना कठिन है। ऐसी साधना के लिए अपेक्षित वस्तु, देश तथा काल आदि की उपलब्धि सहज नहीं होती। ऐसी साधनाओं में विघ्नों का आना स्वाभाविक है। किन्तु, आन्तरिक साधना, साधक यदि अपने को संयत रखे तो, बड़ी सरलता से संपन्न होती है।

योगियों के अनुसार मानव शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों नाड़ी और शिराओं, नाड़िगुल्मों और मस्तिष्क आदि में ब्रह्माण्ड सहित समस्त देवी-देवता स्थित हैं। उनकी मान्यता है कि जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में है, वह हमारे पिण्ड (शरीर) में भी अपने-अपने अभिधान (नाम) के साथ विद्यमान है। अतः पिण्ड के ज्ञान से ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु, ब्रह्माण्ड के साथ पिण्ड की एकात्मकता के लिए, पिण्ड में निहित ब्रह्माण्ड की शक्तियों के ज्ञान या जागरण के लिए, पिण्ड की रोग-निवृत्ति तथा अन्य अनेक प्रयोजनों से शरीर-साधना करके उकृष्ट फलप्राप्ति के लिए बीजाक्षरों या बीजमंत्रों का जप उनके अर्थ के ज्ञान के साथ ही अर्थ के अनुरूप भावना के साथ किया जाना चाहिए।

वस्तुतः, समस्त योग या तांत्रिक-साधना भावना सापेक्ष ही है। वैसे, भावना का महत्त्व लौकिक जीवन में भी देखा जा सकता है। एक युवती का

स्पर्श उसका पिता, भ्राता, पुत्र और पति या प्रेमी आदि कई व्यक्ति करते हैं। किन्तु उस स्पर्श की भावना के भेद से उनकी स्पर्शनुभूति पृथक्-पृथक् होती है। उस युवती के स्पर्श से उसके प्रेमी के मन और शरीर में जो संवेग उत्पन्न होते हैं, वे एक भाई, पिता या पुत्र को नहीं हो सकते। ठीक इसी प्रकार मंत्रों के अर्थ के अनुरूप भावना के साथ जो जप किया जाता है, उसका प्रभाव निश्चित ही होता है। अनजाना स्पर्श और अभावित मंत्र प्रायः प्रभावहीन होते हैं। लेकिन, प्रायः, हमेशा नहीं।

भावना मनस् का विषय है अर्थात् भावना मन से की जाती है। योग या तांत्रिक साधना में शरीर के विभिन्न अवयवों या केन्द्रों में ब्रह्माण्ड के विभिन्न रूपों की भावना की जाती है। क्योंकि 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिंडे'^४ की मान्यता के अनुसार हमारे पिंड में ब्रह्माण्ड के विभिन्न तत्त्व, पदार्थ या रूप सूक्ष्मरूप से वर्तमान हैं।^५ जिस तरह एक सूक्ष्म वट बीज को अंकुरित और पल्लवित करके उसे पूरे वटवृक्ष का रूपाकार दिया जा सकता है, उसी प्रकार शरीर के अन्दर बीज रूप से वर्तमान ब्रह्माण्ड के विभिन्न रूपाकारों को उनके बीजमंत्रों की साधना से साक्षात् किया जा सकता है, अपने लिए और दूसरों के लिए भी। योगी अपने अन्दर भी विश्व का साक्षात्कार कर सकता है और भगवान् कृष्ण ने जैसे अपने में अर्जुन को समस्त ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कराया था, उसी भाति अन्यों को भी करा सकता है।

शरीर या पिंड की ब्रह्माण्ड साधना के लिए भावना की अनिवार्यता कही जा चुकी है। शरीर के किस अंग में किस लोक, वस्तु या तत्त्व की भावना करनी चाहिए और उसका क्या फल है, इस तथ्य का महर्षि पतञ्जलि ने अपने योग दर्शन में विस्तार से उल्लेख किया है। उनके अनुसार नाभिचक्र (मणिपूर) में संयमन करने से समस्त कायव्यूह अर्थात् शरीर की बनावट का ज्ञान हो जाता है – तथा हृदय में मन के संयम से समस्त मनोजग्नत् का ज्ञान प्राप्त होता है— हृदये चित्तसंवित्।

४. अण्डे लोकालोकगिरि: पिण्डे त्वचः। अण्डे जलधि: पिण्डे रक्तम्। सौन्दर्यलहरी (१०)
पर डिंडिमभास्य
५. अंडे ये प्रपञ्चाः स्युः पिण्डे ते च प्रतिष्ठिताः।
लघुत्वं गुरुत्वञ्चर्ते न भेदस्त्वण्डपिण्डयोः ॥

योगदीपिका

जिस समय योगी को प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह सर्वज्ञ हो जाता है— प्रतिभाद्वा सर्वम् । प्रातिभ ज्ञान से योगी के सांसारिक बंधन क्षीण हो जाते हैं और वह चित्त के प्रचार—संस्थानों को जानकर परकाया में प्रवेश भी कर सकता है—

बंधकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥६॥ यहाँ परशरीरावेश या परकाय प्रवेश से तात्पर्य यह भी है कि योगी समस्त नाडियों के संधिस्थल नाभिचक्र का सम्यग् ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अपने इस लघु आकार शरीर के साथ ही अपने विराट् रूप को भी यथार्थतः जानकर उससे तादात्म्य प्राप्त कर लेता है ।

शांडिल्योपनिषद् में भी इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । इस के अनुसार तार (भूमध्य) में मन के संयम से अर्थात् मन को लगाने से समस्त विषयों का ज्ञान हो जाता है । नासिका के अग्रभाग में चित्त के संयम से इन्द्र लोक, नासा के निचले भाग में संयम से निम्नलोक, नेत्रों में संयम से सभी लोकों, कर्ण में संयम से यम लोक, कर्ण के पक्ष (कनपटी) में संयम से निर्दृष्टि लोक, पीठ में संयम से वरुण लोक, बाएं कान में संयम से वायुलोक, कंठ में संयम से चन्द्रलोक, बाई आंख में संयम से शिवलोक, सिर में संयम से ब्रह्मलोक, पैर के निचले भाग में संयम से अतल लोक, पैर में संयम से वितललोक, पाद की संधि में संयमन से नितल लोक, जंघा में संयम से सुतल लोक, जानु (घुटना) में संयम से महातल लोक, उरु में संयम से रसातल लोक, कटि में संयम से तलातल लोक, नाभि में संयम से भूलोक, कुक्षि में संयम से भुवः लोक, भ्रूमध्य में संयम से तपः लोक, मूर्धा में संयम से सत्य लोक, धर्माधर्म में संयम से अतीत अनागत, विभिन्न प्राणियों की ध्वनियों में चित्त लगाने से सभी प्राणियों की ध्वनि, अपने संचित कर्मों में चित्त लगाने से पूर्वजाति (पूर्वजन्म) स्मरण, दूसरे के चित्त में अपना चित्त लगाने से दूसरे के चित्त (विचार) का, अपनी कार्या में चित्त लगाने से अन्य के लिए अदृश्यता, बल में संयम से हनुमानादि की भुंति बल, सूर्य में संयमन से भुवनों का ज्ञान, चन्द्र में संयम से ताराव्यूह का ज्ञान, ध्रुव में

संयमन से उसकी गति, नाभिचक्र में कायव्यूह का ज्ञान, कंठकूप में संयम से भूख-प्यास की निवृत्ति, कूर्म नाड़ी में संयम से स्थिरता, भ्रूमध्य में संयम से सिद्धों के दर्शन, शरीराकाश (हृदयाकाश) में संयम से आकाश में गमन तथा शरीर के अन्य स्थानों पर मन के संयम से विभिन्न लोकों की सिद्धि, होती है।^९

इस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंगों में समस्त ब्रह्माण्ड तथा उनके अधिष्ठाता देवी—देवता स्थित हैं। इनके साथ ही उनके नामों के बीजाक्षर भी वहीं हैं। इन देवताओं के बीज नामों के भावना सहित जप से ब्रह्माण्ड के उस लोक तथा उस देवता का साक्षात्कार या ज्ञान होता है, जिससे वह बीजनाम संबन्धित होता है।

एक प्रश्न बार—बार किया जाता है कि शास्त्रों या पुस्तकों में पढ़कर मंत्र—साधना करनी चाहिए अथवा नहीं? बहुत सी प्रामाणिक पुस्तकों और व्यक्तियों ने कहा है कि केवल पुस्तकें पढ़कर उनके आधार पर मंत्रसाधना करने से लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना अधिक है। इसमें सच्चाई हो सकती है, बहुत से मामलों में ही भी। लेकिन, सिद्ध और सामान्य मंत्रों की साधना शास्त्र में बताई गई विधि से संपन्न की जा सकती है। ऐसी साधना यदि भावना के साथ की जाय तो उसके सफल होने में शक की गुंजाइश नहीं है।

आखिर, पुस्तकों में लिखी हुई मंत्रराशि के उपयोग के लिए प्रमाणिक गुरु ढंडने कोई कहाँ—कहाँ भटके? गुरु गलियों—गलियों में तो मिलते नहीं। तो, फिर किया क्या जाय? उपाय यही है कि यदि मंत्रोपासना किसी शुभ कार्य हेतु करनी है, तो गुरु की प्रतीक्षा किये बिना आरंभ कर देनी चाहिए, गुरु के मिलने की प्रतीक्षा में बैठे नहीं रहना चाहिए।

हमारे ग्रंथों में लिखित बहुत सी साधनाएं, मंत्रराशि और ज्ञान—विज्ञान सदियों से निष्प्रयोज्य, अप्रयुक्त पड़े हैं, उन पर विस्मरण और भ्रांति की धूल जमा हो रही है। यह इसलिए कि उन्हें सिखाने—बताने वाले

गुरुओं की खोज अब भी जारी है। हममें वह साहस और आकांक्षा है ही नहीं कि शास्त्र-विधि के अनुसार उन मंत्रों की साधना और प्रयोग स्वयं करके देखें। मंत्र तो विशुद्ध आध्यात्मिक विज्ञान हैं। इनके व्यावहारिक प्रयोग की कोशिश होनी चाहिए। केवल इस डर से कि इनकी बिना गुरु साधना करने से हानि होगी, इनकी प्रमाणिकता को प्रश्नों के घेरे में बन्द कर बैठे नहीं रहना चाहिए।

भौतिक विज्ञान की जानकारी के लिए क्या पुस्तकों की उपयोगिता नहीं है? किसी औषधि का निर्माण क्या पुस्तकें पढ़कर नहीं किया जा सकता? क्या हम इन सब के लिए पुस्तकों में निहित ज्ञान और प्रक्रिया के प्रति अविश्वास करके योग्य गुरु की खोज में ही लगे रहते हैं? क्या पुस्तकों से ज्ञान का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रचार-प्रसार नहीं होता? यदि ऐसा नहीं है, तो मंत्र-विज्ञान की जानकारी और उसके प्रयोगात्मक उपयोग के लिए हम गुरुओं की प्रतीक्षा क्यों करें?

यह ठीक है कि योग्य गुरुओं से किसी प्रकार का भी ज्ञान-विज्ञान सरलता से ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु, जितना और जहां तक संभव है, हमें प्रमाणिक ऋषियों—मुनियों, साधकों तथा उपासकों द्वारा लिखित और परंपराप्राप्त मंत्रों की साधना शास्त्रों में बताई विधियों के अनुसार अथवा स्वयं आविष्कृत विधि से आरंभ करने में अनिष्ट की आशंका नहीं करनी चाहिए।

साधना में शास्त्रों की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए योगकुण्डल्युपनिषद् में भी कहा गया है कि—

शास्त्रं विनापि संबोद्धुं गुरवोऽपि न शक्नुयुः,

तस्माद् दुर्लभतरं लभ्यं शास्त्रमिदं मुने ।

यावन्न लभ्यते शास्त्रं तावद् भुवि पर्यटेत् यतिः,

यदा संलभ्यते शास्त्रं तदा सिद्धिः करे स्थिता ।

न शास्त्रेण विना सिद्धिं दृष्टा चैव जगत् त्रये,

तस्मान्मेलनदातारं शास्त्रदातारमेव च ।

तदभ्यासप्रदातारं शिवं मत्वा समाश्रयेत् ।



महाशक्ति दुर्गा की उपासना-विधि

महाशक्ति दुर्गा की उपासना के लिए प्रथम आवश्यकता उचित स्थान के चुनाव की है। शास्त्रों में कोई भी पवित्र क्षेत्र, नदी का तट, गुफा-पर्वत-शिखर, तीर्थ स्थान, नदी-संगम, पवित्र जलाशय, उद्यान, घाटी, देव मंदिर, सागर-तट तथा स्वयं साधक का अपना घर उपासना के लिये उत्तम स्थान कहे गये हैं।^१

उपासना में प्रवृत्त होने पर सबसे प्रथम अपने बाह्य और आभ्यन्तर शरीर (तन, मन, बुद्धि आदि बाह्य एवं आन्तरिक अंगोपांगों) को पवित्र करने की भावना के साथ निम्न मंत्र का उच्चारण किया जाना चाहिये —

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वविस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत्पुंडरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

स्थान के चुनाव के पश्चात् कुश या ऊन के आसन पर बैठने से पूर्व उस आसन की शुद्धि कर लेनी चाहिये। आसन की शुद्धि के लिये जगत् को धारण करने वाली भगवती पृथ्वी से निम्न मंत्र से प्रार्थना की जानी चाहिये —

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।

त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम्॥

इसके पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर ललाट में चन्दनादि का टीका लगाकर

१. पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्।

तीर्थप्रदेशः सिन्धूनां संगमं पावनं सरः ॥१॥

उद्यानानि विचित्राणि विल्वमूलं तटं गिरेः।

देवाद्यायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम् ॥२॥

तत्त्वशुद्धि की क्रिया की जानी चाहिये । तत्त्व शुद्धि के लिये भावना के साथ क्रमशः निम्न मंत्रों का उच्चारण करना चाहिये—

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा (आचमन करें)

ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा (पुनः आचमन)

ॐ कलीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा (आचमन)

ॐ ऐं ह्रीं कलीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा॥ (आचमन)

तदनन्तर गणेश तथा शिव आदि देवताओं और अपने गुरु की स्तुति एवं नमन के उपरान्त अनामिका अंगुली में कुश की पवित्री धारण करके दाएं हाथ में लाल पुष्प, अक्षत (बिना टूटे हुए चावल) एवं जल लेकर 'श्री तंत्र दुर्गासप्तशती' के पाठ या जप और हवन आदि का संकल्प निम्न प्रकार से लेना चाहिए—

'ॐ विष्णु विष्णुर्विष्णुः । ॐ नमः परमात्मने ।

श्री पुराणपुरुषोत्तमस्य श्री विष्णोराज्ञाया प्रवर्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीयपरार्थे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे भारतवर्षान्तर्गते पुण्यप्रदेशे** फलप्राप्तिकामः श्री नवदुर्गाप्रसादेन सर्वबाधाविनिर्मुक्तः ***नामाहं श्री महाकालीमहालक्ष्मी महासर—स्वतीदेवताप्रीत्यर्थं श्रीतंत्रदुर्गासप्तशतीपुस्तकस्थापनपूजनपूर्वकं तांत्रिकशापोद्घारेत्कीलनमृतसंजीवनीविद्याया यथाविहितपाठ(जप)पुरःसरं तंत्रोक्तरात्रिसूक्तपाठानन्तरं (जपानन्तरं) यथाविहितनवार्णजपतांत्रिक—सप्तशतीन्यासध्यानपूर्वकं च 'ॐ ऐं श्रीं नमः' इत्यारभ्य 'ॐ ऐं ओं नमः' इत्यन्तं श्री तंत्रदुर्गासप्तशतीपाठं, तदन्ते च यथाविहितं न्यासादि—सहितनवार्णजपं तांत्रिकसप्तशती न्यासध्यानपूर्वकं च तांत्रिकदेवी—सूक्तपाठं (जपं) च करिष्ये ।

संकल्प करने के बाद पुष्पाक्षत सहित जल को धरती पर डाल देना चाहिये ।

** क्षेत्र या प्रदेश का नाम लें ।

*** अपना नाम लें ।

इसके बाद किसी पीठिका या छोटी चौकी पर पुस्तक की स्थापना करके उसमें भगवती की भावना करते हुए —

नमो देव्ये महादेव्ये शिवाये सततं नमः
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्म ताम् ॥

अथवा 'ॐ ऐं हीं नमः' इस बीजमंत्र से पुस्तक की पंचोपचार पूजा करनी चाहिए।

इसके पश्चात् भगवती सप्तशती दुर्गा के यंत्र का निर्माण करके उसके विभिन्न भागों में निर्देशानुसार भगवती दुर्गा तथा अन्य देवी—देवताओं की स्थापना और षोडशोपचार पूजन संपन्न किया जाना चाहिये। दुर्गा—यंत्र विभिन्न ग्रन्थों में कुछ भिन्नता लिये मिलता है, किन्तु दुर्गा सप्तशती के अनुसार इसका निर्माण पूर्वादिक्रम (बाएं से दाएं) से किया जाना ही उचित है। यंत्र मुख्यपृष्ठ पर देखें।

दुर्गायन्त्रनिर्माणविधि:

त्रिकोणे—३। त्रिकोणाद्बाह्ये—६। षट्कोणेषु—६।

षट्कोणबाह्ये—४

अष्टपत्रेषु—२४। चतुर्विशतिदलेषु—२४।

चतुर्विशतिदलेभ्यो बाह्ये—

दिक्षपालाः—१० आयुधानि—१०

भूपुरबाह्ये ४।

‘यन्त्रस्थदेवता परिचयः’

१—	त्रिकोणे बिन्दुमध्ये	हीं
२—	त्रिकोणमध्ये	३ॐ ऐं हीं कर्लीं चामुण्डायै विच्चे। ३ॐ मं मङ्गलायै नमः।
३—	त्रिकोणाद्बाह्ये पूर्वे	३ॐ ब्रह्मणे नमः। ३ॐ सरस्वत्यै नमः।
	नैऋत्यकोणे—	३ॐ विष्णवे नमः। ३ॐ श्रियै नमः।

वायव्यकोणे—

४— षट्कोणेषु पूर्वादिक्रमेण

- ३० शिवाय नमः।
- ३० उमायै नमः।
- ३० नं नन्दजायै नमः।
- ३० रं रक्तदन्तिकायै नमः।
- ३० शां शाकंभयै नमः।
- ३० दुं दुर्गायै नमः।
- ३० भी भीमायै नमः।
- ३० भ्रां भ्रामर्यै नमः।

५— षट्कोणबाह्य (वाहनादीनि)

दक्षिणे—

- ३० मं महिषाय नमः।
- ३० कां कालाय नमः।
- ३० सिं सिंहाय नमः।
- ३० मृं मृत्यवे नमः।

६— अष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण

पूर्वे—

- ३० जं जयायै नमः।
- ३० ब्रां ब्राह्म्यै नमः।
- ३० अं असिताङ्गभैरवाय नमः।
- ३० दों दोग्धै नमः।
- ३० वां वाराहै नमः।
- ३० भीं भीषणभैरवाय नमः।

आग्नेय कोणे—

दक्षिणे—

- ३० अं अजितायै नमः।
- ३० मां माहेश्वर्यै नमः।
- ३० चं चण्डभैरवाय नमः।

नैऋत्यकोणे—

पश्चिमे—

- ३० अं अघोरायै नमः।
- ३० नां नारसिंहै नमः।
- ३० सं संहारभैरवाय नमः।
- ३० निं नित्यायै नमः।
- ३० कौं कौमायै नमः।
- ३० उं उमत्तभैरवाय नमः।

वायव्यकोणे—

३० विं विलासिन्यै नमः।
 ३० ऐं ऐन्द्र्यै नमः।
 ३० कं कपालभैरवाय नमः।

उत्तरे—

३० विं विजयायै नमः।
 ३० वैं वैष्णव्यै नमः।
 ३० रुं रुरुभैरवाय नमः।

ईशान कोणे—

३० अं अपराजितायै नमः।
 ३० चां चामुण्डायै नमः।
 ३० क्रों क्रोधभैरवाय नमः।

७—चतुर्विशतिदलेषु पूर्वादिक्रमेणः—

३० विं विष्णुमायै नमः१।	३० चे चेतनायै नमः२।
३० बुं बुद्ध्यै नमः३।	३० नि निद्रायै नमः४।
३० क्षुं क्षुधायै नमः५।	३० छां छायायै नमः६।
३० शां शक्त्यै नमः७।	३० तृं तृष्णायै नमः८।
३० क्षां क्षान्त्यै नमः९।	३० जा जात्यै नमः१०।
३० लं लज्जायै नमः११।	३० शां शान्त्यै नमः१२।
३० श्रं श्रद्धायै नमः१३।	३० क्रां कान्त्यै नमः१४।
३० लं लक्ष्म्यै नमः१५।	३० धृं धृत्यै नमः१६।
३० वृं वृत्त्यै नमः१७।	३० स्मृं स्मृत्यै नमः१८।
३० दं दयायै नमः१९।	३० तुं तुष्ट्यै नमः२०।
३० पुं पुष्ट्यै नमः२१।	३० मा मात्रे नमः२२।
३० भ्रां भ्रान्त्यै नमः२३।	३० चिं चित्त्यै नमः२४।

१. ऐन्द्री के स्थान पर अपराजिता का उल्लेख मिलता है। वास्तव में, ऐन्द्री ही अपराजिता है।

८— चतुर्विंशतिदले भ्यो बाहे पूर्वादिक्रमेण

दिग्पाला:

लं इन्द्राय नमः १। रं अग्नये नमः २।
 मं यमाय नमः ३। क्षं निर्झतये नमः ४।
 वं वरुणाय नमः ५। यं वायवे नमः ६।
 सं सोमाय नमः ७। हं ईशानाय नमः ८।
 ई०प० मध्ये — अं ब्रह्मणे नमः ९।
 प०नि० मध्ये — हीं अनन्ताय नमः १०।

आयुधानि

ॐ वं वज्राय नमः १। ॐ शं शक्तये नमः २।
 ॐ दं दण्डाय नमः ३। ॐ खं खड्डाय नमः ४।
 ॐ पां पाशाय नमः ५। ॐ अं अंकुशाय नमः ६।
 ॐ गं गदायै नमः ७। ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः ८।
 ॐ ई०प० पं पद्माय नमः ९। ॐ प०नि० चं चक्राय नमः १०।

९—भूपुरबाहे चतुष्कोणेषु

आग्नेय्याम्—क्षं क्षेत्रपालाय नमः १। नैर्झत्याम्—वं वटुकाय नमः २।
 वायव्ये—यों योगिनीभ्यो नमः ३। ऐशान्याम्—गं गणपतये नमः ४।

उपर्युक्त विधि से सप्तशती यंत्र का निर्माण करके उसमें भगवती दुर्गा, अन्य देवी—देवताओं, दिक्पाल, आयुध तथा वाहन आदि का आवाहन करके षोडशोपचार से उनकी पूजा—अर्चना निम्न प्रकार से की जानी चाहिये—

षोडशोपचार दुर्गापूजनम्

संकल्पः

ॐ अद्येत्यादि मम ‘अमुकगोत्रोत्पन्नयजमानस्य’ इह जन्मनि सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धि स्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयादिपुरःसरं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये श्रीदुर्गापूजनमहं करिष्ये (कारयिष्ये)।

ध्यानम्

ॐ विद्युदामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्ग्रस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदेषु खेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विध्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे ॥

१. आवाहनम् —

आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥*

२. आसनम् —

अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम् ।
कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥

३. पादम् —

गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ।
तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

४. अधर्यम् —

गन्धपुष्पाक्षतै युक्तमर्थं सम्पादितं मया ।
गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा ॥

५. आचमनम् —

आचम्यतां त्वया देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।
ईस्तिं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ॥

६. स्नानम् —

जाहवीतोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम् ।
स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम् ॥

* नित्य पूजा में या मंदिर में पूजन करते समय देवी का आवाहन और विसर्जन नहीं किया जाता ।

पञ्चामृतस्नानम्

पयोदधिघृतं क्षौद्रं सितया च समन्वितम् ।
पञ्चामृतमनेनाद्य कुरु स्नानं परमेश्वरि ॥

शुद्धोदकस्नानम्

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्नानिजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयामि सुरेश्वरि ।

७. वस्त्रम् —

वस्त्रं च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥

८. आभूषणम् —

हारकङ्कणके यूरमेखलाकुण्डलादिकम् ।
रत्नाद्यं कुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

सिन्दूरम्

सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम् ।
पूजितासि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

कज्जलम्

चक्षुभ्या कज्जलं रम्यं सुभगे शान्तिकारके ।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि ॥

सौभाग्यद्रव्यम्

सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुते ।
कण्ठे बधामि देवेशि सौभाग्यं देहिं मे सदा ॥

सुगन्धितैलम्

चन्दनागरुकर्पूरकुइकुमं रोचनं तथा ।
कस्तूर्यादिसुगन्धाश्च सर्वाङ्गेषु विलेपनम् ॥

परिमलद्रव्यम्

हरिद्रारञ्जिते देवि सुखसौभाग्यदायिनि ।
तस्मात् त्वा पूजयाम्यद्यसुखं शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अक्षतान्

रञ्जिता: कुंकुमौघेन अक्षताश्चातिशोभना: ।
मामेषां देवि दानेन प्रसन्ना भव शोभने ॥

पुष्पाणि

मन्दारपरिजातादि पाटलीकेतकानि च ।
जातीचम्पकपुष्पाणि गृहाणेमानि शोभने ॥

बिल्वपत्रम्

अमृतोदभवश्रीवृक्षो महादेवि प्रियः सदा ।
बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥

१. गन्धम् —

परमानन्दसौभाग्यपरिपूर्णदिग्न्तरे ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि ॥

कुइकुमम्

कुइकुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनीकामसंभवम् ।
कुइकुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

१०. पुष्पमालाम् —

सुरभिपुष्पनिचयै ग्रथितां पुष्पमालिकाम् ।
ददामि तव शोभार्थं गृहाण परमेश्वरि ॥

११. धूपम् —

दशाङ्गुगृगुलधूपचन्दनागरुसंयुतम् ।
समर्पितं मया भक्त्या महादेवि प्रगृह्णताम् ॥

१२. दीपम् —

घृतवर्तिसमायुक्तं महातेजो महोज्ज्वलम् ।
दीपं ददामि देवेशि सुप्रीता भव सर्वदा ॥

१३. नैवेद्यम् —

अनं चतुर्विधं स्वादु रसैः षडभिः समन्वितम् ।
नैवेद्यं गृह्णातां देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥

ताम्बूलपूगीफलानि

एलालवङ्गकस्तूरीकपूरैः पुष्पवासिताम् ।
वीटिकां मुखवासार्थमर्पयामि सुरेश्वरि ॥

१४. नमस्कारम् —

सर्वस्वरूपे सर्वेशो सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मात नमोऽस्तुते ॥

आरतिकम्

नीराजनं सुमाङ्गल्यं कपूरैः समन्वितम् ।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवि नमोऽस्तुते ॥

पुष्पाञ्जलिः

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशोषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्धचित्ता ॥

१५. प्रदक्षिणा —

नमस्ते देवि देवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे ।
नमस्ते जगतां धात्रि नमस्ते भक्तवत्सले ॥

१६. विसर्जनम् -

इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्या महेश्वरि।

रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्थानं यथोत्तमम्॥*

भगवती की षोडशोपचार पूजा के उपरान्त शापोद्धार आदि की क्रिया संपन्न कर लेनी चाहिए। शापोद्धार के लिए 'ॐ हीं कलीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डकादेव्यै शापनाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्र का 7 बार (पाठ के अन्त में भी 7 बार) जप करना चाहिये।

इसके बाद - ॐ श्रीं कलीं हीं सुप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा' इस उत्कीलन-मंत्र का 21 बार (अन्त में भी 21 बार) जप करना चाहिये।

उत्कीलन के उपरान्त मृतसंजीवनी मंत्र 'ॐ हीं हीं वं वं ऐं ऐं मृतसंजीवनि विद्ये मृतमुत्थापयोत्थापय क्रीं हीं हीं वं स्वाहा' इस मंत्र का 7 बार (अन्त में भी 7 बार) पाठ करना चाहिये।

शापोद्धारादि के पश्चात् तंत्र दुर्गासप्तशती के निम्नांकित तंत्रोक्त रात्रिसूक्त का पाठ (जप) करना चाहिये-

* ॐ ऐं हीं नमः१। ॐ ऐं श्रां (स्त्रां) नमः२।

ॐ ऐं स्लूं नमः३। ॐ ऐं क्रैं नमः४।

ॐ ऐं त्रां नमः५। ॐ ऐं फ्रां नमः६।

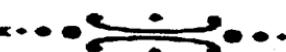
ॐ ऐं जीं नमः७। ॐ ऐं लूं नमः८।

ॐ ऐं स्लूं नमः९। ॐ ऐं नों नमः१०।

ॐ ऐं स्त्रीं नमः११। ॐ ऐं श्रूं नमः१२।

ॐ ऐं सूं नमः१३। ॐ ऐं जां नमः१४।

ॐ ऐं बौं नमः१५। ॐ ऐं ओं नमः१६।**



* नित्य पूजा में देवी का विसर्जन नहीं किया जाता।

* तंत्र दुर्गासप्तशती के साधक विद्वद्वर श्री शिवदत्त शास्त्रो के अनुसार 'तंत्र दुर्गासप्तशती' के पाठ में षडंग (कवच, आर्गला, कीलक, प्राथमिक रहस्य, वैकृतिक रहस्य तथा मूर्ति रहस्य) पाठ नहीं करना चाहिये।

** पाठान्तर

नवार्ण मंत्र का विनियोग—न्यासादि

तांत्रिक रात्रिसूक्त के पाठ या जप के उपरान्त नवार्ण मंत्र का कम से कम १०८ बार जप किया जाना चाहिये। नवार्ण मंत्र के जप के पहले इस महामंत्र का विनियोग, न्यास तथा ध्यान आदि सम्पन्न किये जाने का विधान है।

विनियोग

नवार्ण मंत्र का जप आरंभ करने से पहले ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा कीलक को उल्लेख करने वाले निम्नांकित मंत्र को पढ़ते हुए इसका विनियोग सम्पन्न करना चाहिये—

श्रीगणपतिर्जयति । ॐ नवार्णमंत्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दासि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता, ऐं बीजम्, हीं शक्तिः, कलीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

न्यास

न्यास क्रिया में मंत्रों को चेतन और मूर्तिमान मानकर उन—उन अंगों का नाम लेकर उन मंत्ररूप देवताओं का ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है। ऐसा करने से पाठ या जप करने वाला व्यक्ति मंत्रमय हो जाता है तथा मंत्र में अधिष्ठित देवता उसकी रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यास द्वारा उसके बाहर—भीतर की शुद्धि होती है। इसमें साधक को असीम दैवी शक्ति प्राप्त होती है और उसकी साधना निर्विघ्न पूर्ण होती है।

न्यास पांच प्रकार के होते हैं

१. ऋष्यादिन्यास
२. करन्यास
३. हृदयादिन्यास
४. अक्षरन्यास, तथा
५. दिङ्गन्यास।

ऋष्यादिन्यास

ऋष्यादि न्यास में निम्नांकित पांच मंत्रों का अलग-अलग उच्चारण करते हुए क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण तथा नाभि—इन पांच अंगों को दाहिने हाथ की अंगुलियों से स्पर्श करना चाहिये:—

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, (शिरसि)। गायत्र्युष्णिगुष्टुपृछन्दोभ्यो नमः, (मुखे)। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, (हृदि)। ऐं बीजाय नमः, (गुद्धे)। हीं शक्तये नमः, (पादयो:)। कलीं कीलकाय नमः, (नाभौ)। तदनन्तर *‘ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे’, इस मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए दोनों हाथों का परस्पर स्पर्श करके कर—शुद्धि करनी चाहिये।

करन्यास

करन्यास में हाथ की विभिन्न अँगुलियों, हथेलियों और हाथ के पृष्ठ भाग में निम्न बीजमन्त्रों का न्यास (स्थापन) किया जाता है—

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः

(दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करें)

ॐ हीं तर्जनीभ्यां नमः

(दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करें)

ॐ कलीं मध्यमाभ्यां नमः

(अँगूठों से दोनों मध्यमा अँगुलियों का स्पर्श करें)

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः

(अँगूठों से अनामिका अँगुलियों का स्पर्श करें)

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः

(अँगूठों से कनिष्ठिका अँगुलियों का स्पर्श करें)

ॐ ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

(हथेलियों और उनके पृष्ठ भागों का परस्पर स्पर्श करें)

* नवार्ण मंत्र के आरम्भ में ॐ लगाने की आवश्यकता नहीं है।

हृदयादिन्यास

हृदयादिन्यास में निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से हृदय आदि अंगों का स्पर्श किया जाता है।

ॐ ऐं हृदयाय नमः

(दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से हृदय का स्पर्श करें।

ॐ हीं शिरसे स्वाहा

(सिर का स्पर्श करें)

ॐ कलीं शिखायै वषट्

(शिखा का स्पर्श करें)

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्

(दाहिने हाथ की अँगुलियों से बाएं कंधे का और बाएं हाथ की अँगुलियों से दाहिने कंधे का एक साथ ही स्पर्श करें)

ॐ विच्चे नेत्रवत्यायै वौषट्

(दाहिने हाथ की अँगुलियों से दोनों नेत्रों तथा ललाट के मध्य भाग का स्पर्श करें)

ॐ ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्

(यह मंत्र पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बाँयी ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आयें तथा तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाएं।)

अक्षरन्यास

निम्नांकित मंत्रों को पढ़ते हुए क्रमशः शिखा आदि का दाहिने हाथ की अँगुलियों से स्पर्श करें—

ॐ ऐं नमः शिखायाम्। ॐ हीं नमः दक्षिणत्रे।

ॐ कलीं नमः वामनत्रे। ॐ चां नमः दक्षिणकर्णे।

ॐ मुं नमः वामकर्णे । ॐ डां नमः दक्षिणनासापुटे ।
 ॐ यैं नमः वामनासापुटे । ॐ विं नमः मुखे ।
 ॐ विच्चें नमः गुह्ये ।

इस प्रकार अक्षरन्यास करके ॐ ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे, इस मन्त्र को आठ बार पढ़ते हुए दोनों हाथों द्वारा सिर से लेकर पैर तक सभी अंगों का स्पर्श करें ।

दिङ्गन्यास

दिङ्गन्यास में निम्नांकित दस मंत्रों को पढ़ते हुए क्रमशः मंत्र के देवताओं की स्थापना चुटकी बजाते हुए दशों दिशाओं में करें ।

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः ।
 ॐ हीं दक्षिणायै नमः । ॐ हीं नैऋत्यै नमः ।
 ॐ कलीं प्रतीच्यै नमः । ॐ कलीं वायव्यै नमः ।
 ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः ।
 ॐ ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वाय नमः ।
 ॐ ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ।

ध्यानम्

महाकाली

खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघाञ्छूलभुशुण्डीं शिरः
 शंहुं संदधतीङ्गरैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
 नीलाशमद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
 यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ १ ॥

महालक्ष्मी

अक्षस्कपरशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
 दण्डं शक्तिमसिं च चर्मजलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
 शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम् ।
 सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥

महासरस्वती

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुःसायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा
पूर्वमित्र सरस्वतीमनुभंजे शुभ्भादिदैत्यार्दिनीम्॥ ३॥

माला पूजन मंत्र

भगवती के ध्यान के बाद 'ऐ हीं अक्षमालिकायै नमः' मन्त्र से
माला की पूजा करके निम्न मन्त्र से माला की प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मात् मे सिद्धिदा भव॥ १॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृहणामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥ २॥

इसके बाद — 'ऐ हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे' इस मंत्र का १०८
बार जप करे। जप पूर्ण करने के पश्चात्

गुह्यातिगुह्यगोप्ती त्वं गृहणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् महेश्वरि॥

यह श्लोक पढ़कर भावना पूर्वक देवी के बाएं हाथ में जप का फल
समर्पित कर देना चाहिये।

इतिनवार्णजपविधिः

श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती का विनियोग—न्यास—ध्यानादि।

नवार्ण मंत्र का विधि के अनुसार जप पूर्ण करने के बाद सप्तशती
का विनियोग न्यास और ध्यान करना चाहिये।

विनियोगः

प्रथममध्यमोत्तमचरित्राणां ब्रह्माविष्णुरुद्रा ऋषयः श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो
देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि नन्दाशाकंभरीभीभाः शक्तयः,
रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा
ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वती प्रीत्यर्थे
जपे विनियोगः।

करन्यासः

१. ॐ ऐं स्लूं नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
२. ॐ ऐं फ्रैं नमः तर्जनीभ्यां नमः।
३. ॐ ऐं क्रीं नमः मध्यमाभ्यां नमः।
४. ॐ ऐं म्लूं नमः अनामिकाभ्यां नमः।
५. ॐ ऐं घैं नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
६. ॐ ऐं श्रूं नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

१. खङ्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा॥
२. ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खडगेन चाम्बिके।
घण्ठा स्वनेन नः पाहि चापज्यानि स्वनेन च।
३. प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥
४. ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोरणि तैः रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥
५. ॐ खडगशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः।
६. ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशो सर्वशवितसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते।

हृदयादिन्यासः

१. ॐ ऐं स्लूं नमः हृदयाय नमः।
 २. ॐ ऐं फ्रे नमः शिरसे स्वाहा।
 ३. ॐ ऐं क्रीं नमः शिखायै वषट्।
 ४. ॐ ऐं म्लूं नमः कवचाय हुम्।
 ५. ॐ ऐं द्वै नमः नेत्रत्रयायवौषट्।
 ६. ॐ ऐं श्रूं नमः अस्त्राय फट्।
-

१. खङ्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिधायुधा॥ —हृदयाय नमः।
२. ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टा स्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च। —शिरसे स्वाहा।
३. प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ —शिखायै वषट्।
४. ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थधोराणि तैः रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥ —कवचाय हुम्।
५. ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः। —नेत्रत्रयायवौषट्।
६. ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशो सर्वशवितसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते। अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

विद्युद्धामसमप्रभां मृगपतिस्कधस्थितां भीषणां
कन्याभिःकरवालखेटविलसद्वस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखां श्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे॥

इति श्रीतन्त्रादुर्गासप्तशती—विनियोग—न्यास ध्यानादि ॥

શ્રી તંગદુર્ગાસપદશાલી

(સપદશાત્યા ગૃહ્ણાવીજનામાવલિ)

अथ श्रीतन्त्रदुर्गासप्तशती

श्री गणेशाय नमः

अथ प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः,
नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्,
श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे (पाठे) विनियोगः।

ध्यानम्

खडगं चक्रगदेणु चापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधातीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाशमद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम्।
यामस्तौ त्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे। ॐ बीजत्रयायै विद्वाहे
तत्प्रधानायै धीमहि। तनः शक्तिः प्रचोदयात्।

ॐ ऐं श्री* नमः१। ॐ ऐं हीं नमः२।

३० नमश्चण्डिकायै

‘३० ऐं’ मार्कण्डेय उवाच ॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथयते ७ष्टमः।

निशामय तदुत्पतिं विस्तराद् गदतो मम ॥२॥

* श्रां इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं कलीं नमः३। ॐ ऐं श्रीं नमः४।
 ॐ ऐं प्रीं नमः५। ॐ ऐं हा॒ँ नमः६।
 ॐ ऐं हीं नमः७। ॐ ऐं सौं नमः८।
 ॐ ऐं प्रे॑ नमः९। ॐ ऐं प्री॒ नमः१०।
 ॐ ऐं हली॒ नमः११। ॐ ऐं म्लीं नमः१२।

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
 स बभूव महाभागः सावर्णस्तनयो रवे:॥३॥
 स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशासमुद्धवः।
 सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥४॥
 तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
 बभूवः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥५॥
 तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डनः।
 न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः॥६॥
 ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
 आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥७॥
 अमात्यैर्बलिभिर्दृष्टैर्दृष्टलस्य दुरात्मभिः।
 कोशो बलं चापहतं तत्रापि स्वपुरे ततः॥८॥
 ततो मृगयाव्याजेन हतस्वाम्यः स भूपतिः।
 एकाकी हयमारुद्ध जगाम गहनं वनम्॥९॥
 स तत्राश्रमद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
 प्रशान्तश्चापदाकीर्ण मुनिशिष्योपशोभितम्॥१०॥
 तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
 इतश्चेतश्च विचरस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे॥११॥
 सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः।
 मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत्॥१२॥

१. हुं इति ख पुस्तके। २. श्रीं इति पाठान्तरम्। ३. हलीं इति ख—ग पुस्तके।

ॐ ऐं स्त्रीं नमः१३। ॐ ऐं क्रां नमः१४।
 ॐ ऐं हस्तीं* नमः१५। ॐ ऐं क्रीं नमः१६।
 ॐ ऐं चां नमः१७। ॐ ऐं भे** नमः१८।
 ॐ ऐं क्रीं नमः१९। ॐ ऐं वैं नमः२०।
 ॐ ऐं हौं नमः२१। ॐ ऐं युं नमः२२।

मद्भृत्यैस्तैरसद्‌वृत्तै र्धर्मतः पाल्यते न वा।
 न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः॥१३॥
 मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
 ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः॥१४॥
 अनुवृत्तिं धूवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
 असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्धिः सततं व्ययम्॥१५॥
 संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
 एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः॥ १६॥
 तत्र विप्राश्रमाभ्याशो वैश्यमेकं ददर्श सः।
 स पृष्ठस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः॥ १७॥
 सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
 इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्॥१८॥
 प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्॥१९॥

वैश्य उवाच॥२०॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले॥२१॥
 पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
 विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्॥२२॥

* हीं इति ग पुस्तके। ** भे इति ग पुस्तके,
(क पुस्तके बीजं नास्ति, ख पुस्तके पृष्ठमेव नास्ति)

ॐ ऐं जुं नमः२३। ॐ ऐं हं४ नमः२४।
 ॐ ऐं शं नमः२५। ॐ ऐं रौं५ नमः२६।
 ॐ ऐं यं नमः२७। ॐ ऐं विं नमः२८।
 ॐ ऐं वैं नमः२९। ॐ ऐं चे६ नमः३०।
 ॐ ऐं हीं नमः३१। ॐ ऐं क्रूं नमः३२।
 ॐ ऐं सं नमः३३। ॐ ऐं कं नमः३४।

वनमध्यागतो दुःखी निरस्तशाप्तबन्धुभिः।
 सोऽहं न वेदि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्॥२३॥
 प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
 किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्रतम्॥२४॥
 कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥२५॥

राजोवाच॥२६॥

यैनिरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः॥२७॥
 तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥२८॥

वैश्य उवाच॥२९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्रतं वचः॥३०॥
 किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः॥
 यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः॥३१॥
 पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
 किमेतत्राभिजानामि जानन्नपि महामते॥३२॥
 यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
 तेषां कृते मे निश्चासो दौर्मनस्यं च जायते॥३३॥
 करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥३४॥

४. हैं इति पाठान्तरम्। ५. रों इति ख—ग पुस्तके। ६. चैं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्री*१ नमः३५। ॐ ऐं त्रों नमः३६।
 ॐ ऐं स्त्रां नमः३७। ॐ ऐं ज्य**२ नमः३८।
 ॐ ऐं रौं नमः३९। ॐ ऐं द्रां नमः४०।
 ॐ ऐं हा***३ नमः४१। ॐ ऐं हां नमः४२।
 ॐ ऐं द्रूं नमः४३। ॐ ऐं शां नमः४४।
 ॐ ऐं क्री**४ नमः४५। ॐ ऐं श्रौं नमः४६।

मार्कण्डेय उवाच ॥३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥
 समाधिनामि वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ॥
 कृत्वा तु तौ यथान्याय यथार्हं तेन संविदम् ॥३७॥
 उपविष्टो कथाः काश्चिच्चक्रतुवैश्यपार्थिवौ ॥३८॥

राजोवाच ॥३९॥

भगवं स्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥४०॥
 दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विनाशाः ॥
 ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१॥
 जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तमः ॥
 अयं च निष्कृतः पुत्रैर्दर्शभृत्यैस्तथोज्जितः ॥४२॥
 स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दीं तथाप्यति ॥
 एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥
 दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥
 तत्किमेतन्महाभाग यन्मो होऽज्ञानिनोरपि ॥४४॥
 ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥४५॥

ऋषिरुवाच ॥४६॥

*१ श्रां इति ग पुस्तके। *२ ज्यों इति ग पुस्तके, ख पुस्तके पृष्ठं नास्ति।
 **३ द्रों इति ग पुस्तके, ख पुस्तके पृष्ठं नास्ति। **४ मीं इति ग पुस्तके।

३० ऐं जु^७ नमः४७। ३० ऐं हल्लू^८ नमः४८।
 ३० ऐं श्रू^९ नमः४९। ३० ऐं प्री नमः५०।
 ३० ऐं र नमः५१। ३० ऐं व^{१०} नमः५२।
 ३० ऐं ब्रो^{११} नमः५३। ३० ऐं ब्लू^{१२} नमः५४।
 ३० ऐं स्त्रां* नमः५५। ३० ऐं ल्वा^{१३} नमः५६।

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ।
 विषयश्च महाभाग याति चैव पृथक् पृथक् ॥४७॥
 दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धस्तथापरे ।
 केचिदिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्ट्यः ॥४८॥
 ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ।
 यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ॥४९॥
 ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ।
 मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यतथोभयोः ॥५०॥
 ज्ञानेऽपि सति पश्यतान् पतञ्जाञ्छावचञ्चुषु ।
 कणमोक्षादतान्मोहात्पीडयमानानपि क्षुधा ॥५१॥
 मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ।
 लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि ॥५२॥
 तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः ।
 महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ॥५३॥
 तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
 महामाया हरेश्वीषा तया संस्रोह्यते जगत् ॥५४॥
 ज्ञानिनामपि चेतासि देवी भगवती हि सा ।
 बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥५५॥
 तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥

७. जं इति पाठान्तरम्। ८. हल्लू इति ख पुस्तके। ९. वा इति पाठान्तरम्।

१०. द्री इति इति ख—ग पुस्तके। ११. ब्लू इति इति ख—ग पुस्तके।

* स्त्रां इति ग पुस्तके। १२. ब्लां इति पाठान्तरम्।

३० ऐं लू^{१३} नमः५७। ३० ऐं सां नमः५८।
 ३० ऐं रौ^{१४} नमः५९। ३० ऐं स्हौं नमः६०।
 ३० ऐं क्रूं नमः६१। ३० ऐं शौ^{१५} नमः६२।
 ३० ऐं श्रौ^{१६} नमः६३। ३० ऐं वं नमः६४।
 ३० ऐं त्रू^{१७} नमः६५। ३० ऐं क्रौं नमः६६।
 ३० ऐं कलूं नमः६७। ३० ऐं कलीं नमः६८।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥
 सा विद्या परमा मुक्ते हेतुभूता सनातनी ॥५७॥
 संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

राजोवाच ॥५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥६०॥
 ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मस्याश्च किं द्विज ।
 यत्प्रभावाच सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥
 तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

ऋषिरुवाच ॥६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥६४॥
 तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
 देवानां कार्यसिद्धचर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥
 उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याच्यभिधीयते ।
 योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥६६॥
 आस्तीर्य शोषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
 तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥६७॥
 विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
 स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥६८॥

१३. स्लूं इति पाठान्तरम् । १४. रों इति पाठान्तरम् । १५. शों इति पाठान्तरम् ।
 १६. श्री इति पाठान्तरम् । १७. भैं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं श्री^{१८} नमः६९। ॐ ऐं ब्लौ^{१९} नमः७०।
 ॐ ऐं ठां^{२०} नमः७१। ॐ ऐं ही^{२१} नमः७२।
 ॐ ऐं स्त्रां^{२२} नमः७३। ॐ ऐं स्लूं नमः७४।
 ॐ ऐं क्रै^{२३} नमः७५। ॐ ऐं त्रा^{*} नमः७६।
 ॐ ऐं फ्रां नमः७७। ॐ ऐं जीं नमः७८।

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
 तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहदयस्थितः॥६९॥
 विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्।
 विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्॥७०॥
 निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥७१॥

ब्रह्मोवाच ॥७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका॥७३॥
 सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
 अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥७४॥
 त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।
 त्वयैतद्वार्यते विश्वं त्वयैतत्सूज्यते जगत्॥७५॥
 त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
 विसुष्टै सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥७६॥
 तथा संहतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
 महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः॥७७॥
 महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।
 प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी॥७८॥

१८. सीं इति पाठान्तरम्। १९. व्रीं इति पाठान्तरम्। २०. वीं इति पाठान्तरम्।

२१. ढीं इति ख—ग पुस्तके। २२. स्वीं इति ख, स्तां इति ग पुस्तके, * स्तां इति ग पुस्तके।
२३. क्रं, इति ख पुस्तके, क्रें इति पाठान्तरम्। * चां इति ग पुस्तके, ख.पु.प० नास्ति।

ॐ ऐं लू* नमः८९। ॐ ऐं स्लू नमः८०।
 ॐ ऐं नो नमः८१। ॐ ऐं स्त्री८४ नमः८२।
 ॐ ऐं प्रू८५ नमः८३। ॐ ऐं सू८६ नमः८४।
 ॐ ऐं आ८७ नमः८५। ॐ ऐं बौ८८ नमः८६।
 ॐ ऐं ओ८९ नमः८७। ॐ ऐं श्रौं नमः८८।

०००

कालरात्रिर्महारात्रिमौहरात्रिक्षा दारुणा।
 त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा॥८९॥
 लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टि स्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
 खडगिनी शूलिनी धोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥८०॥
 शाह्नुनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
 सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी॥८१॥
 परापराणा परमा त्वमेव परमेश्वरी।
 यच्च किंचित्कवचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके॥८२॥
 तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।
 यया त्वया जगत्स्वष्टा जगत्पात्यति यो जगत्॥८३॥
 सोऽपि निद्रावशां नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
 विष्णुः शारीरग्रहणमहमीशान एव च॥८४॥
 कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
 सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारै देवि संस्तुता॥८५॥
 मोहयैतौ दुराधर्षाविसुरौ मधुकैटभौ।
 प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥८६॥
 बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥८७॥

ऋषिरुवाच॥८८॥

* जू इति ग पुस्तके, ख.पु.पू. नास्ति। २४. स्त्रीं इति पाठान्तरम्। २५. प्रं इति ख,
प्रीं इति ग पुस्तके। २६. चं इति ख पुस्तके। २७. श्रौं इति पाठान्तरम्। २८. वां इति ख,
वौं इति ग पुस्तके, वाँ इति ग पुस्तके। २९. आं इति पाठान्तरम्।

- ३० ऐं क्रं नमः८९। ३० ऐं रुं नमः९०।
 ३० ऐं कलीं नमः९१। ३० ऐं दुं नमः९२।
 ३० ऐं हीं नमः९३। ३० ऐं गूं नमः९४।
 ३० ऐं लां नमः९५। ३० ऐं हा॒ नमः९६।
 ३० ऐं गं नमः९७। ३० ऐं ऐं नमः९८।
 ३० ऐं श्रौं नमः९९। ३० ऐं जूं नमः१००।
-

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥८९॥
 विष्णोः प्रबोधनाथार्थ्य निहन्तु मधुकैटभौ ।
 ने त्रास्यनासिकाबाहु हृदये भ्यस्तथोरसः ॥९०॥
 निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥९१॥
 एकार्णवे ऽहिशर्यनात्ततः स दद्धशे च तौ ।
 मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥९२॥
 क्रोधरक्तेक्षणावत्तु ब्रह्मणं जनितोद्यमौ ।
 समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥
 पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
 तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥
 उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो वियताभ्यामिति केशवम् ॥९५॥

श्रीभगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्याकुभावपि ॥९७॥
 किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृत्तं मम ॥९८॥
 ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ १००॥

३०. गं इति इति ख उस्तके।

ॐ ऐं डे नमः१०१। ॐ ऐं श्रौं नमः१०२।
 ॐ ऐं छां*१ नमः१०३। ॐ ऐं कलीं*२ नमः१०४।
 'ॐ श्रीं कलीं हीं हीं फट् स्वाहा'*

इति प्रथमोऽध्यायः

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः।
 आवां जहि न यत्रोर्वा सलिलेन परिप्लुतो।१०१॥

ऋषिरुवाच।१०२॥

तथोत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
 कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः।१०३॥
 एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
 प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः श्रृणु वदामि ते।ऐ ॐ।१०४॥

ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन।
 ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां कांपीलवासिनीं नमः ॥
 ॐ साङ्घायै सपरिवारायै सवाहनायै सर्वायुधायै
 वाग्भवबीजाधिष्ठात्र्यै महाकाल्यै महाहृतिमर्यामि नमः स्वाहा।**

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्त्रतरे देवीमाहात्म्ये
 मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः।



*१ छां इति ग पुस्तके। *२ क्रीं, हीं, श्रीं इति ग पुस्तके।

* हवनमंत्र। ** प्रथम अध्याय में 'वाग्भवबीजाधिष्ठात्र्यै महाकाल्यै', द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ में 'हल्लेखाबीजाधिष्ठात्र्यै महालक्ष्म्यै' तथा पंचम से त्रयोदश अध्यायों में, 'कामबीजाधिष्ठात्र्यै' का उच्चारण करते हुए हवन किया जाना चाहिये।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णु ऋषिः, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक्छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजं, वायुस्तत्त्वं, यजुर्वेदः स्वरूपं, श्री महालक्ष्मीप्रीत्यर्थे मध्यमचरित्रजपे (पाठे) विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ अक्षम्भक्परशुं गदेषु कुलिशां पदां धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधातीं हस्तैः प्रसन्नानां
से वे सैरिभ्मर्दिनीभिः महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं श्रीं नमः२।
ॐ ऐं हसौं नमः३। ॐ ऐं हौं नमः४।

‘ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥’

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशातं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिषे देवानां च पुरन्दरे॥२॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥३॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशागरुडध्वजौ॥४॥

१. सं इति पाठान्तरम्। २. हौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं हीं॑ नमः॒५। ॐ ऐं अं नमः॒६।
 ॐ ऐं कलीं॑ नमः॒७। ॐ ऐं चां नमः॒८।
 ॐ ऐं मुं नमः॒९। ॐ ऐं डां नमः॒१०।
 ॐ ऐं यैं नमः॒११। ॐ ऐं विं नमः॒१२।
 ॐ ऐं च्चे॑ नमः॒१३। ॐ ऐं ईं नमः॒१४।

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
 त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम्॥५॥
 सूर्येन्द्रागन्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
 अन्येणां चाधिकारान् स स्वयमेवाधिष्ठिति॥६॥
 स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
 विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना॥७॥
 एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
 शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥८॥
 इत्थां निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
 चकार कोषं शाम्भुश्च भूकुटीकुटिलाननौ॥९॥
 ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
 निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च॥१०॥
 अन्येणां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
 निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत॥११॥
 अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तभिव पर्वतम्।
 दद्युस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिग्न्तरम्॥१२॥
 अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
 एकस्थं तदभूत्तारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥१३॥
 यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
 याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा॥१४॥

३. हौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सौं नमः१५। ॐ ऐं गं नमः१६।
 ॐ ऐं त्रौं नमः१७। ॐ ऐं लूं नमः१८।
 ॐ ऐं वं नमः१९। ॐ ऐं हां नमः२०।
 ॐ ऐं क्रीं* नमः२१। ॐ ऐं सौं नमः२२।
 ॐ ऐं यं नमः२३। ॐ ऐं एं नमः२४।

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
 वारुणेन च जडघोरु नितम्बस्तेजसा भुवः॥१५॥
 ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदद्गुल्योऽकर्तेजसा।
 वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका॥१६॥
 तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा
 नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा॥१७॥
 भुवौ च संधययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
 अन्येषां चैव देवानां समभवस्तेजसां शिवा॥१८॥
 ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
 तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिता:॥१९॥
 शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
 चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः॥२०॥
 शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशानः।
 मारुतो दत्तवांश्चापि बाणपूर्णे तथेषुधी॥२१॥
 वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः।
 ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात्॥२२॥
 कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपति दर्ददौ।
 प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्॥२३॥
 समस्तरोमकूपेषु निजरशमीन् दिवाकरः।
 कालश दत्तवान् खड्गं तस्याश्रमं च निर्मलम्॥२४॥

४. द्रां इति ख-ग पुस्तके। ५. वं इति ग पुस्तके, हुं इति पाठान्तरम्।
 * हां इति ग पुस्तके।

ॐ एं मूँ नमः२५। ॐ एं सँ नमः२६।
 ॐ एं हं नमः२७। ॐ एं सं नमः२८।
 ॐ एं सोँ नमः२९। ॐ एं शं नमः३०।
 ॐ एं हं नमः३१। ॐ एं हौं नमः३२।
 ॐ एं म्लीं नमः३३। ॐ एं यूँ नमः३४।

क्षीरोदशामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
 चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२५॥
 अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केरूरान् सर्वबाहुषु ।
 नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६॥
 अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
 विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२७॥
 अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेदां च दंशनम् ।
 अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२८॥
 अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
 हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२९॥
 ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
 शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥३०॥
 नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
 अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥३१॥
 सम्मानिता ननादोश्चैः साङ्घासं मुहुर्मुहुः ।
 तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥३२॥
 अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
 चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३३॥
 चचाल वसुधा चेलुः सलिलाश्च महीधराः ।
 जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥

६. सं इति पाठान्तरम् । ७. सः इति ख—ग पुस्तके ।
 ८. से इति ख पुस्तके, साँ इति पाठान्तरम् । ९. यं इति ख पुस्तके ।

ॐ ऐं त्रूं नमः३५। ॐ ऐं सीं० नमः३६।
 ॐ ऐं आं नमः३७। ॐ ऐं प्रे०१ नमः३८।
 ॐ ऐं शं नमः३९। ॐ ऐं हा० नमः४०।
 ॐ ऐं स्मौ२ नमः४१। ॐ ऐं ऊ३ नमः४२।
 ॐ ऐं गौ४ नमः४३। ॐ ऐं व्य५ नमः४४।

तुष्टुवुर्मनयश्चैनां भक्तिनमात्ममूर्तयः।
 द्युवा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः॥३५॥
 संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
 आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः॥३६॥
 अभ्यधावत् ३६ तं ३७ शब्दमशोषैरसुरैर्वृतः।
 स दर्दश ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा॥३७॥
 पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोलिलखिताम्बराम्।
 क्षोभिताशेषपातालां धनुज्यनिःस्वनेन ताम्॥३८॥
 दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्।
 ततः प्रवृत्ते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम्॥३९॥
 शस्त्राखैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिग्नतरम्।
 महिषासुरसे नानीश्विक्षुराख्यो महासुरः॥४०॥
 युयुधे चामरश्चान्यै शतुरङ्गबलान्वितः।
 रथानामयुतैः षडभिरुदग्राख्यो महासुरः॥४१॥
 अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
 पञ्चाशदभिक्षा नियुतैरसिलोमा महासुरः॥४२॥
 अयुतानां शतैः षडभिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
 गजवाजिसहस्रौघैरने कैः परिवारितः॥४३॥
 वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
 बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशदभिरथायुतैः॥४४॥

१०. सीं इति ख पुस्तके। ११. प्रैं इति पाठान्तरम्। १२. सूं इति पाठान्तरम्।
 १३. हुं इति पाठान्तरम्। १४. गं इति ख पुस्तके।
 १५. श्रूं इति ग पुस्तके, सूं इति पाठान्तरम्।

- ॐ ऐं हौं नमः४५। ॐ ऐं भैं नमः४६।
 ॐ ऐं हां नमः४७। ॐ ऐं क्रूं नमः४८।
 ॐ ऐं सूं नमः४९। ॐ ऐं लर्वं नमः५०।
 ॐ ऐं श्रां नमः५१। ॐ ऐं द्रूं नमः५२।
 ॐ ऐं हूं नमः५३। ॐ ऐं हसौ* नमः५४।
-

युयुधुः संयुगे तत्र रथानां परिवारितः।
 अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥४५॥
 युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
 कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥४६॥
 हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः।
 तोपरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥४७॥
 युयुधुः संयुगे देव्या खाङ्गैः परशुपटिशौः।
 केविश्च विक्षिपुः शक्तिः केवित्पाशास्तथापरे ॥४८॥
 देवीं खाङ्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
 सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥४९॥
 लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्णिणी।
 अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्णिभिः ॥५०॥
 मुमोचासुरदेहेण शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।
 सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥५१॥
 चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।
 निःश्वासन् मुमुचे याश्च युध्यमाना रणेऽभ्युक्ता ॥५२॥
 त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः।
 युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशौ ॥५३॥
 नाशायन्तोऽसुरगणान् देवीशक्तयुपबृहिताः।
 अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खास्तथापरे ॥५४॥

१६. हूं इति ख—ग पुस्तके। १७. भं इति ख पुस्तके। १८. सूं इति पाठान्तरम्।
 १९. द्रूं इति ख—ग पुस्तके। * हस्तौ इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं क्रा॑ नमः५५। ॐ ऐं स्हौ॑ नमः५६।
 ॐ ऐं म्ल॑ नमः५७। ॐ ऐं श्री॑ नमः५८।
 ॐ ऐं गै॑ नमः५९। ॐ ऐं क्री॒० नमः६०।
 ॐ ऐं त्री॑ नमः६१। ॐ ऐं क्सी॒१ नमः६२।
 ॐ ऐं फ्रो॒२ नमः६३। ॐ ऐं फ्रो॒३ नमः६४।

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
 ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥
 खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
 पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥
 असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
 केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥५७॥
 विपोथिता निषातेन गदया भुवि शोरते ।
 वेमुञ्च केचिद्विधिर्मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥
 केचित्रिपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
 निरन्तरा॒ः शरौधेण कृता॒ः केचिद्रणाजिरे ॥५९॥
 से नानु कारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
 केषांचिद् बाहवाशिष्ठन्नाछिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥
 शिरांसि पेतुरन्ये गामन्ये मध्ये विदारिताः ।
 विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुव्या॒ महासुरा॒ः ॥६१॥
 एकबाह्विक्षिचरणाः केचिदेव्या॒ द्विधा॒ कृताः॒ ।
 छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥६२॥
 कबन्धा॒ युयुधुर्देव्या॒ गृहीतपरमायुधाः॒ ।
 ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥
 कबन्धाशिष्ठन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः॑ ।
 तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६४॥

२०. कृ इति ख, क्रू इति ग पुस्तके। २१. क्सी इति ख—ग पुस्तके।
 २२. कृ इति ख—ग पुस्तके। २३. फ्रौ इति ग पुस्तके, फ्रां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं हीं नमः६५। ॐ ऐं शा॒ नमः६६।
 ॐ ऐं क्ष्मी॑ नमः६७। ॐ ऐं रो॑४ नमः६८।
 ॐ ऐं छू॑४ नमः६९।

‘ॐ ऐं क्री॑ं क्रां सौ॑ सः फट् स्वाहा॑’

इति द्वितीयोऽध्यायः

पातितै॑ रथनागाशवैरसुरैश्च वसुन्धरा।
 अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स॒ महारणः ॥६५॥
 शोणितौघा॑ महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्तुवुः।
 मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥
 क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां॑ तथाम्बिका।
 निन्ये क्षयं यथा वहिस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥
 स च सिंहो॑ महानादमुत्स॒जन्धुतके॒ सरः।
 शरीरे॑ भ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६८॥
 देव्या॑ गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं॑ महासुरैः।
 यथैषां तुतुषुर्देवाः॑ मुष्पवृष्टिमुचो॑ दिवि ॥६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मनवत्तरे देवीमहात्म्ये
 महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥



२४. रीं इति पाठान्तरम्। २५. ङुं इति ख, हुं इति ग पुस्तके। ऊं इति पाठान्तरम्।

अथ तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उद्यद्वानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमा॑ शिरोमालिका॑
रक्तालिप्तपयोधरा॑ जपवटी॑ विद्यामभीति॑ वरम्।
हस्ताब्जैर्दधती॑ त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवी॑ बद्धहिमांशुरत्नमुकुटा॑ वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

ॐ ऐं श्रौं॑ नमः१। ॐ ऐं क्ली॑ नमः२।
ॐ ऐं सा॑ नमः३। ॐ ऐं त्रो॑ नमः४।
ॐ ऐं प्रौं॑ नमः५। ॐ ऐं म्ली॑ नमः६।

‘३० ऋषिरुवाच ॥१॥

निहन्यमानं॑ तत्सैन्यमवलोक्य॑ महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः॑ कोपाद्ययौ॑ योदधुमथाम्बिकाम्॥२॥
सैन्ये॑ देवी॑ शारवर्णेण॑ ववर्ण॑ समरेऽसुरः।
यथा॑ मेरुगिरे॑ शृङ्गं॑ तोयवर्णेण॑ तोयदः॥३॥
तस्यच्छित्त्वा॑ ततो॑ देवी॑ लीलयैव॑ शरोत्करान्।
जघान॑ तुरगान्॑ बाणै॑ र्यन्तारं॑ चैव॑ वाजिनाम्॥४॥
चिच्छेद॑ च॑ धनुः॑ सद्यो॑ ध्वजं॑ चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध॑ चैव॑ गात्रेण॑ छिन्नधन्वानमाशुगैः॥५॥
सच्छिन्नधन्वा॑ विरथो॑ हताशो॑ हतसारथिः।
अभ्यधावत॑ तां॑ देवीं॑ खद्गचर्मधरोऽसुरः॥६॥

१. श्रौं इति ख पुस्तके, श्रा॑ इति पाठान्तरम्। २. प्रौं इति ख पुस्तके।
३. त्रो॑ इति पाठान्तरम्॥४. म्ली॑ इति ख—ग पुस्तके।

ॐ ऐं क्रौं नमः७। ॐ ऐं द्वीं नमः८।
 ॐ ऐं स्लीं नमः९। ॐ ऐं हीं नमः१०।
 ॐ ऐं हौं* नमः११। ॐ ऐं श्रा* नमः१२।
 ॐ ऐं ग्रो* नमः१३। ॐ ऐं क्रूं नमः१४।
 ॐ ऐं क्रीं नमः१५। ॐ ऐं या नमः१६।

सिंहमाहत्य खडगेन तीक्षणधारेण मूर्धनि।
 आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान्॥७॥
 तस्याः खडगे भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन!
 ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः॥८॥
 चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
 जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात्॥९॥
 दृश्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
 तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः॥१०॥
 हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
 आजगाम गजारुद्धशामरस्त्रिदशार्दनः॥११॥
 सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्त्रामम्बिका द्रुतम्।
 हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्ठ्रभाम्॥१२॥
 भग्नां शक्ति निपतितां दृश्वा क्रोधसमन्वितः।
 चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत्॥१३॥
 ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
 बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा॥१४॥
 युद्धचमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
 युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः॥१५॥
 ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
 करप्रहारेण शिरश्शामरस्य पृथकृतम्॥१६॥

५. हीं इति पाठान्तरम्। * ख पुस्तके बीजमंत्रं नास्ति। ६. ग्रीं इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं दलूं नमः१७। ॐ ऐं द्वूं नमः१८।
 ॐ ऐं क्षां नमः१९। ॐ ऐं ओं नमः२०।
 ॐ ऐं क्रौं नमः२१। ॐ ऐं क्ष्मक्लरीं नमः२२।
 ॐ ऐं वां नमः२३। ॐ ऐं श्रूं नमः२४।
 ॐ ऐं ब्लूं नमः२५। ॐ ऐं ल्तीं नमः२६।

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
 दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः॥१७॥
 देवी कृद्वा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
 वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम्॥१८॥
 उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
 त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी॥१९॥
 विडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
 दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥२०॥
 एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
 माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्॥२१॥
 कांशित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
 लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छङ्गाभ्यां च विदारितान्॥२२॥
 वेगेन कांशिदपरान्नादेन भूमणेन च।
 निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले॥२३॥
 निपात्य प्रमथानीकमध्यधावत सोऽसुरः।
 सिहं हन्तुं महादेव्या: कोपं चक्रे ततोऽम्बिका॥२४॥
 सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
 शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च॥२५॥
 वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
 लाङ्गूलेनाहतश्वाभ्यः प्लावयामास सर्वतः॥२६॥

७. क्रां इति पाठान्तरम्। ८. ग्लूं इति ख—ग पुस्तके। ९. ल्तां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं प्रे नमः२७। ॐ ऐं हूँ नमः२८।
 ॐ ऐं हौं नमः२९। ॐ ऐं दे नमः३०।
 ॐ ऐं नूं नमः३१। ॐ ऐं आ॒॑ नमः३२।
 ॐ ऐं फ्रा॒॑ नमः३३। ॐ ऐं प्री॒॑ नमः३४।
 ॐ ऐं दू॒॑ नमः३५। ॐ ऐं फ्री॒॑ नमः३६।

धुतश्लविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्धनाः ।
 श्वासानिलास्ताः शतशो निषेतुर्भसोऽचलाः॥२७॥
 इति क्रोधसमाधातमापत्तं महासुरम् ।
 द्वृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्॥२८॥
 सा क्षिप्त्वा तस्य वै प्राशं तं बबन्ध महासुरम् ।
 तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामधे॥२९॥
 ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
 छिनत्ति तावत्पुरुणः खडगपाणिरदृश्यतः॥३०॥
 तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
 तं खडगचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभूत्महागजः॥३१॥
 करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
 कर्षतस्तु करं देवी खडगेन निरकृन्तत॥३२॥
 ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
 तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३३॥
 ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
 पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचनाम्॥३४॥
 ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ।
 विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥३५॥
 सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
 उवाच तं मदोदधूतमुखरागाकुलाक्षरम्॥३६॥

१०. हुं इति ख पुस्तके । ११. श्रां इति पाठान्तरम् । १२. ऋं इति पाठान्तरम् ।
 १३. प्रां इति ख पुस्तके । १४. दं इति ख—ग पुस्तके, दूं इति पाठान्तरम् ।
 १५. फ्रां इति ख पुस्तके ।

ॐ ऐं हीं ६ नमः ३७। ॐ ऐं गूं नमः ३८।
 ॐ ऐं श्रौं नमः ३९। ॐ ऐं सां नमः ४०।
 ॐ ऐं श्रीं नमः ४१। ॐ ऐं जुं नमः ४२।
 ॐ ऐं हं नमः ४३। ॐ ऐं सं नमः ४४।

‘ॐ हीं श्रीं कुं फट् स्वाहा’

इति तृतीयोऽध्यायः

देव्युवाच ॥३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हते त्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥३८॥

ऋषिरुवाच ॥३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरुदा तं महासुरम् ।
 पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥४०॥
 ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्तः ।
 अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥
 अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
 तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२॥
 ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
 प्रहर्ष च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥
 तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः
 जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुशाप्सरोगणाः ॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मनवन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥



१६. हाँ इति ख पुस्तके।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखामपि करैरुद्धहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं।
ध्यायेद् दुर्गा जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं सौं नमः२।
ॐ ऐं दों नमः३। ॐ ऐं प्रे॑ नमः४।

ॐ ऋषिरुचाच ॥१॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्भशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोदगमचारुदेहाः॥२॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या
तामन्विकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः॥३॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभ्यस्य मतिं करोतु ॥४॥

१. दीं इति ख पुस्तके । २. प्रैं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं या नमः५। ॐ ऐं रुः नमः६।
 ॐ ऐं भः नमः७। ॐ ऐं सूः नमः८।
 ॐ ऐं श्रा नमः९। ॐ ऐं औः नमः१०।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
 पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
 श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
 ता त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥५॥
 किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
 किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
 किं चाहवेषु चरितानि तवाद्दुतानि
 सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥६॥
 हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न—
 ज्ञायसे हरिहरादिभिरस्यपारा।
 सर्वश्रियाखिलमिदं जगदंशाभूत—
 मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥७॥
 यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
 तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
 स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु—
 रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥८॥
 या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहावता त्व—
 मध्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
 मोक्षार्थिभि मुनिभिरस्तसमस्तदोषै—
 विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥९॥
 शब्दात्मिका सुविमलर्यजुषां निधान—
 मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
 देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
 वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री॥१०॥

३. क इति पाठान्तरम्। ४. भे इति पाठान्तरम्।

५. ओं इति ख—ग पुस्तके, कर्ली इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं लूं नमः११। ॐ ऐं झूं नमः१२।
 ॐ ऐं जूं नमः१३। ॐ ऐं धूं नमः१४।
 ॐ ऐं त्रे नमः१५। ॐ ऐं हीं नमः१६।

मे धासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
 दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
 श्री कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
 गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११॥
 ईश्वरसहासममल परिपूर्णचन्द्र —
 बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
 अत्यद्भुतं प्रहतमात्तरुषा तथापि
 वक्त्रं विलोक्य सहस्रा महिषासुरेण ॥१२॥
 दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भृकुटीकराल—
 मुद्द्युच्छशाङ्कसद्वाच्छवि यन्न सद्यः।
 प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
 कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३॥
 देवि प्रसीद परमा भवती भवाय।
 सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
 विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत—
 त्रीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४॥
 ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
 तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
 धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
 येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१५॥
 धम्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा—
 ण्यत्याद्वतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
 स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा—
 ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६॥

६. जुं इति ख पुस्तके। ७. हीं इति ख, श्री इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं श्रीं*१ नमः१७। ॐ ऐं ई नमः१८।
 ॐ ऐं हां नमः१९। ॐ ऐं हूर्ण*२ नमः२०।
 ॐ ऐं कलूं नमः२१। ॐ ऐं क्रां नमः२२।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशोषजन्तोः
 स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभा ददासि।
 दारिद्रचदुःखाभयहारिणि का त्वदन्या
 सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्धचित्ता ॥१७॥
 एभिहृतैर्जगदुपैति सुखां तथैते
 कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
 संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
 मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥
 दृष्टवैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
 सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोऽि शस्त्रम्।
 लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
 इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥

खडगप्रभानिकस्फुरणैस्तशोग्रैः

शूलाग्रकान्तिनिवहेन द्व्योऽसुराणाम्।

यत्रागता विलयमंशुपदिन्दुखण्ड —

योग्यानन्तं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
 रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
 वीर्यं च हन्तृहतदेवपराक्रमाणां
 वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥
 केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
 रूपं च शत्रुभयकार्यंतिहारि कुत्र।
 चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
 त्वयेव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥

*१ हीं इति ग पुस्तके। *२ हूं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ल्लूं नमः२३। ॐ ऐं फ्रे नमः२४।
 ॐ ऐं क्रीं नमः२५। ॐ ऐं म्लूं नमः२६।
 ॐ ऐं घ्रे॑ नमः२७। ॐ ऐं श्रौं नमः२८।
 ॐ ऐं हौं नमः२९। ॐ ऐं व्रीं नमः३०।
 ॐ ऐं हीं नमः३१। ॐ ऐं त्रौं नमः३२।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिषुनाशनेन
 त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
 नीता दिवं रिषुगणा भयमप्यपास्त —
 मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥
 शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
 घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥२४॥
 प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
 भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥
 सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
 यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२६॥
 खड्गशूलगदादीनि यानि चाक्षाणि तेऽम्बिके ।
 करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥

ऋषिरुवाच ॥२८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्धवैः।
 अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥
 भक्त्या समस्तैखिदशौर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
 प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥

देव्युवाच ॥३१॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥३२॥

८. लूं इति पाठान्तरम्। ९. घ्रे॑ इति ख, घ्रे॑ इति ग पुस्तके, घ्रे॑ इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं हसौऽ० नमः३३। ॐ ऐं गीं नमः३४।
 ॐ ऐं यूं नमः३५। ॐ ऐं हीं नमः३६।
 ॐ ऐं हूं० नमः३७। ॐ ऐं श्रौं नमः३८।
 ॐ ऐं ओं नमः३९। ॐ ऐं अं नमः४०।
 ॐ ऐं म्हौं* नमः४१। ॐ ऐं प्रीं नमः४२।
 ॐ 'अं हीं श्रीं हंसः फट् स्वाहा'

इति चतुर्थोऽध्यायः

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते ।
 यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिणासुरः ॥३४॥
 यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ।
 संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ॥३५॥
 यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ।
 तस्य वित्तद्विभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ॥३६॥
 वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥
 ॐ ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽथे तथाऽऽत्मनः ।
 तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥
 इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
 देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैणिणी ॥४०॥
 एुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् ।
 वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुभ्निशुभ्योः ॥४१॥
 रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
 तच्छृणुष्व मयाऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ।हीं ॐ ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
 शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

१०. हल्लौं इति ख, हीं इति ग पुस्तके। ११. हूं इति ख पुस्तके। * म्लौं इति ग पुस्तके।

अथ पंचमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य उत्तरचरित्रस्य रुद्रं ऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वं, सामवेदः स्वरूपं, श्रीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थं पाठे (जपे) विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्। गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा पूर्वामित्र सरस्वतीमनुभजे शुभ्मादिदैत्यार्दिनीम्॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं प्रीं नमः२।
ॐ ऐं आं नमः३। ॐ ऐं हीं नमः४।

०००

०००

०००

ॐ कलीं ऋषिरुवाच ॥१॥
एरा शुभनिशुभ्माभ्यामसुराभ्यां शाचीपते ।।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हता मदबलाश्रयात् ॥२॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।।
कौबेरमथं याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥३॥
तावेव षष्ठवनद्विं च चक्रतुर्वहिकर्म च ।।
ततो देवा विनिर्धूताः भृष्टराज्याः पराजिताः ॥४॥

१. ओं इति ग पुस्तके, क्रीं इति गाठान्तरम्।

ॐ ऐं लरीं नमः५। ॐ ऐं त्रों नमः६।
 ॐ ऐं क्रीं नमः७। ॐ ऐं हसौं नमः८।
 ॐ ऐं हीं नमः९। ॐ ऐं श्रीं नमः१०।
 ॐ ऐं हूं नमः११। ॐ ऐं कलीं नमः१२।
 ॐ ऐं रौं नमः१३।

हताधिकारास्त्रिदशास्त्राभ्यां सर्वे निराकृताः।
 महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥५॥

तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽपत्सु स्मृताखिलाः।
 भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः॥६॥

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
 जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः॥७॥

देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
 नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियता; प्रणताः स्म ताम्॥९॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
 ज्योत्स्नायै चेन्दुरुपिण्यै सुखायै सततं नमः॥१०॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
 नैऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शार्वण्यै ते नमो नमः॥११॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
 ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥१२॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
 नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥१३॥

२. हुं इति ख पुस्तके। ३. रां ख पुस्तके, ओं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्त्रीं नमः१४। ॐ ऐं म्लीं नमः१५।
 ॐ ऐं प्लूं नमः१६। ॐ ऐं स्हां नमः१७।
 ॐ ऐं स्त्रीं नमः१८। ॐ ऐं ग्लूं नमः१९।
 ॐ ऐं व्रीं नमः२०। ॐ ऐं सौं नमः२१।
 ॐ ऐं लूं नमः२२। ॐ ऐं ल्लूं नमः२३।
 ॐ ऐं द्रां नमः२४। ॐ ऐं क्सां नमः२५।
 ॐ ऐं क्ष्म्रीं नमः२६। ॐ ऐं ग्लौं नमः२७।
 ॐ ऐं स्कूं नमः२८। ॐ ऐं त्रूं नमः२९।
 ॐ ऐं स्क्लूं नमः३०। ॐ ऐं क्रौं*१ नमः३१।
 ॐ ऐं छ्रीं*२ नमः३२। ॐ ऐं म्लूं नमः३३।
 ॐ ऐं क्लूं*३ नमः३४।

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
 नमस्तस्यै ॥१४॥ नमस्तस्यै ॥१५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥
 या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
 नमस्तस्यै ॥१७॥ नमस्तस्यै ॥१८॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥
 या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै ॥२०॥ नमस्तस्यै ॥२१॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
 या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै ॥२३॥ नमस्तस्यै ॥२४॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै ॥२६॥ नमस्तस्यै ॥२७॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
 या देवी सर्वभूतेषु च्छायारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै ॥२९॥ नमस्तस्यै ॥३०॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥३१॥
 या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै ॥३२॥ नमस्तस्यै ॥३३॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥३४॥

४. प्लुं इति ख पुस्तके। ५. स्हां इति ग पुस्तके। ६. सां इति ख पुस्तके।

७. लं इति ख पुस्तके। ८. ल्लं ख पुस्तके, क्लूं इति पाठान्तरम्। ९. स्कं इति ख—ग पुस्तके। *१ क्रों इति ग पुस्तके। *२ द्रीं इति ग पुस्तके। *३ शां इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं शां*३ नमः३५। ॐ ऐं लही*३ नमः३६।
 ॐ ऐं स्त्रूं नमः३७। ॐ ऐं ल्लीं नमः३८।
 ॐ ऐं लीं नमः३९। ॐ ऐं सं नमः४०।
 ॐ ऐं लूं नमः४१। ॐ ऐं हसूं० नमः४२।
 ॐ ऐं श्रूं नमः४३। ॐ ऐं जूं नमः४४।
 ॐ ऐं हस्त्री*३ नमः४५। ॐ ऐं स्कीं नमः४६।
 ॐ ऐं कला नमः४७। ॐ ऐं श्रूं नमः४८।
 ॐ ऐं हं नमः४९। ॐ ऐं ह्लीं नमः५०।
 ॐ ऐं कसूं०० नमः५१। ॐ ऐं द्रौं नमः५२।
 ॐ ऐं कलूं नमः५३। ॐ ऐं गां नमः५४।
 ॐ ऐं सं नमः५५।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥३५॥ नमस्तस्यै॥३६॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥३७॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥३८॥ नमस्तस्यै॥३९॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥४०॥
 या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥४१॥ नमस्तस्यै॥४२॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥४३॥
 या देवी सर्वभूतेषु लज्जा रूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥४४॥ नमस्तस्यै॥४५॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥४६॥
 या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥४७॥ नमस्तस्यै॥४८॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥४९॥
 या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥५०॥ नमस्तस्यै॥५१॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥५२॥
 या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥५३॥ नमस्तस्यै॥५४॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥५५॥।

*१ ह्लीं इति ग पुस्तके। *३ लीं इति ग पुस्तके। १०. हसं इति ख, हयूं इति ग पुस्तके।
 ११. क्षं इति ख पुस्तके, क्लूं इति ग पुस्तके। *३ हलीं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ल्पा^{*२} नमः५६। ॐ ऐं फ्रीं नमः५७।
 ॐ ऐं स्लां नमः५८। ॐ ऐं ल्लूं नमः५९।
 ॐ ऐं फ्रे नमः६०। ॐ ऐं ओ^{*३} नमः६१।
 ॐ ऐं स्लीं नमः६२। ॐ ऐं हां नमः६३।
 ॐ ऐं ओ^{*४} नमः६४। ॐ ऐं हूं नमः६५।
 ॐ ऐं हूं*१ नमः६६। ॐ ऐं नं नमः६७।
 ॐ ऐं सां नमः६८। ॐ ऐं वं नमः६९।
 ॐ ऐं मं नमः७०। ॐ ऐं म्क्लीं नमः७१।
 ॐ ऐं शां*२ नमः७२। ॐ ऐं लं नमः७३।
 ॐ ऐं भं नमः७४। ॐ ऐं ल्लूं नमः७५।
 ॐ ऐं हौं नमः७६।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥५६॥ नमस्तस्यै॥५७॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥५८॥
 या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥५९॥ नमस्तस्यै॥६०॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥६१॥
 या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥६२॥ नमस्तस्यै॥६३॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥६४॥
 या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥६५॥ नमस्तस्यै॥६६॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥६७॥
 या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥६८॥ नमस्तस्यै॥६९॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥७०॥
 या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥७१॥ नमस्तस्यै॥७२॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥७३॥
 या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै॥७४॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥७५॥

१२. क्लीं इति पाठान्तरम्। १३. या इति पाठान्तरम्। १४. ऊं इति ख—ग पुस्तके।

*१ हूं इति ग पुस्तके। *२ आं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं ईं नमः७७। ॐ ऐं चे९६ नमः७८।
 ॐ ऐं क्लर्णी९१ नमः७९। ॐ ऐं हलर्णी९२ नमः८०।
 ॐ ऐं क्षम्लर्णी९३ नमः८१। ॐ ऐं यू९३ नमः८२।
 ॐ ऐं श्रौं नमः८३। ॐ ऐं हौं नमः८४।
 ॐ ऐं भूं नमः८५। ॐ ऐं कस्त्री९४ नमः८६।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
 भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥७७॥
 चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
 नमस्तस्यै॥७८॥ नमस्तस्यै॥७९॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥८०॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया—
 तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
 करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
 शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः॥८१॥
 या साम्रतं चोद्धतदैत्यतापितै—
 रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
 या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
 सर्वापदो भक्तिविनम्भूर्तिभिः॥८२॥

ऋषिरुवाच ॥८३॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
 स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्व्या नृपनन्दन॥८४॥
 साब्रवीत्तान् सुरान् सुर्भूभवद्धिः स्तूयतेऽत्र का।
 शारीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा॥८५॥
 स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुभदैत्यनिराकृतैः।
 देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः॥८६॥

१५. चैं इति पाठान्तरम्। *१ क्लर्णी, क्लर्णी च इति ग पुस्तके। *२ हौं इति ग पुस्तके।
 *३ पूं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं आं नमः८७। ॐ ऐं क्रूं नमः८८।
 ॐ ऐं त्रूं नमः८९। ॐ ऐं द्वौ९ नमः९०।
 ॐ ऐं जां नमः९१। ॐ ऐं हूरूं नमः९२।
 ॐ ऐं फ्रौ९ नमः९३। ॐ ऐं क्रौ९ नमः९४।
 ॐ ऐं कि९ नमः९५। ॐ ऐं गलौ९ नमः९६।

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।

कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।

कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥

ततोऽम्बिकां परं रूपं विभ्राणा सुमनोहरम्।

ददर्श चण्डो मुण्डश्च भूत्यौ शुभ्मनिशुभ्योः ॥८९॥

ताभ्यां शुभ्माय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।

काष्यास्ते ऋषी महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥

नैव ताद्वच्च विचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।

ज्ञायतां काष्यसौ देवी गृह्णतां चासुरेश्वर ॥९१॥

स्त्रीरत्नपतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विणा।

सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमहति ॥९२॥

यानि रत्नानि मणयो गजाश्चादीनि वै प्रभो।

त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥९३॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।

पारिजाततरुश्याय तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥९४॥

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति ते ऽङ्गणे।

रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्वृतम् ॥९५॥

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।

किञ्चलिकनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥९६॥

१६. इं इति ख, उं इति ग पुस्तके। १७. फ्रां इति पाठान्तरम्। १८. क्रों इति पाठान्तरम्।
१९. चीं इति पाठान्तरम्। २०. गलों, इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं छ्रकली^{*१} नमः९७। ॐ ऐं रं नमः९८।
 ॐ ऐं कसैं नमः९९। ॐ ऐं स्हु^{*२} नमः१००।
 ॐ ऐं श्रौं नमः१०१। ॐ ऐं हश्री^{*३} नमः१०२।
 ॐ ऐं ओं नमः१०३। ॐ ऐं लूं नमः१०४।
 ॐ ऐं ल्हू^{*४} नमः१०५। ॐ ऐं ल्लू^{*५} नमः१०६।

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनसावि तिष्ठति।
 तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽसीत्प्रजापतेः॥९७॥
 मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीशा त्वया हता।
 पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे॥९८॥
 निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
 वहिरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी॥९९॥
 एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहतानि ते।
 स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मात् गृह्णते॥१००॥

ऋषिरुच ॥१०१॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।
 प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्॥१०२॥
 इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
 यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु॥१०३॥
 स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोदेशोऽतिशोभने।
 सा देवी तां ततः प्राह श्लक्षणं मधुरया गिरा॥१०४॥

दूत उचाच ॥१०५॥

देविं दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
 दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशभिहागतः॥१०६॥

२१. कलीं इति ख, ध्वकलीं इति ग पुस्तके। *१ स्हू इति ग पुस्तके।

*२ श्रौं इति ग पुस्तके। *३ हूं इति ग पुस्तके। २२. ल्लं ख पुस्तके, ल्लूं इति पाठान्तरम्।

३० ऐं स्त्री^{*३} नमः१०७। ३० ऐं स्त्रौ^{*४} नमः१०८।
 ३० ऐं स्त्रौ^{*५} नमः१०९। ३० ऐं क्षक्तिर्ली^{*६} नमः११०।
 ३० ऐं व्रीं नमः१११। ३० ऐं सीं नमः११२।
 ३० ऐं भूं^{*७} नमः११३। ३० ऐं लां^{*८} नमः११४।
 ३० ऐं श्रौं नमः११५। ३० ऐं स्हैं^{*९} नमः११६।

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
 निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥१०७॥
 मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
 यज्ञभागानहं सर्वानुपाशनामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥
 त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशोषतः ॥
 तथैव गजरत्नं च हत्वा^{*१०} देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥
 क्षीरो दमथनो द्वूतमध्यरत्नं ममामरैः ।
 उच्चैः श्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥
 यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषु रगेषु च ।
 रत्नभूतानि भूतानि तानि मध्येव शोभने ॥१११॥
 स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहं वयम् ।
 सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥
 मां वा ममानुजं वांपि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
 भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥
 परमैर्धर्यमतुलं प्राप्त्यसे मत्परिग्रहात् ।
 एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहात् व्रज ॥११४॥

ऋषिरुवाच ॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ ।
 दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥११६॥

२३. स्त्रीं इति पाठान्तरम्। *४ स्त्रौं इति ग पुस्तके। *५ स्त्रौं इति ग पुस्तके।
 *६ क्षक्तिर्लीं इति ग पुस्तके। २४. भूं इति ख—ग पुस्तके। २५. प्लां इति पाठान्तरम्।
 २६. स्हैं इति ग पुस्तके, स्हौं इति पाठान्तरम्। ** 'हत्म' इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं हीं नमः११७। ॐ ऐं श्रीं नमः११८।
 ॐ ऐं फ्रे नमः११९। ॐ ऐं रु^{२७} नमः१२०।
 ॐ ऐं च्छु^{२८} नमः१२१। ॐ ऐं ल्हू* नमः१२२।
 ॐ ऐं कं नमः१२३। ॐ ऐं द्रे^{२९} नमः१२४।
 ॐ ऐं श्रीं नमः१२५। ॐ ऐं सा^{३०} नमः१२६।

देव्युवाच ॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्।
 त्रैलोक्याधिपतिः शुभ्मो निशुभश्चापि ताद्वाः। ११८॥
 किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
 श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा। ११९॥
 यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति।
 यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति। १२०॥
 तदागच्छतु शुभ्मोऽत्र निशुभ्मो वा महासुरः।
 मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृहातु मे लघु। १२१॥

दूत उवाच ॥१२२॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि बूहि ममाग्रतः।
 त्रैलोक्ये कः पुमास्तिष्ठेदग्रे शुभनिशुभयोः। १२३॥
 अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
 तिष्ठन्ति समुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका। १२४॥
 इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
 शुभादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि समुखम्। १२५॥
 सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पाश्वे शुभनिशुभयोः।
 केशाकर्णणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि। १२६॥

२७. रुं इति ख पुस्तके। २८. च्छुं ख पुस्तके, च्छां इति पाठान्तरम्। * ह्लू इति ग पुस्तके।
 २९. द्रं इति पाठान्तरम्। ३०. कों इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं हीं नमः१२७। ॐ ऐं ऐं नमः१२८।

ॐ ऐं स्कलीं नमः१२९।

*

इति पञ्चमोऽध्यायः

देव्युवाच ॥१२७॥

एवमेतद् बली शुभ्भो निशुभ्भश्चातिवीर्यवान्।

कि करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।

तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥३५॥१२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुण्णे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये

देव्या दूतसंवादे नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥



* बीजमंत्र उपलब्ध नहीं है। अतः इस के स्थान पर नवार्णमंत्र से हवन किया जा सकता है।

अथ षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ नागाधीशरविष्ट्रां फणिफणोत्तंसोरुत्तनावली—
भास्वदेहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्धासिताम् ।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परा
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्गनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१ । ॐ ऐं ओं* नमः२ ।
ॐ ऐं त्रूं नमः३ । ॐ ऐं ह्रौं नमः४ ।
ॐ ऐं क्रौं नमः५ । ॐ ऐं श्रौं नमः६ ।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्या स दूतोऽमर्षपूरितः ।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥२॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराद् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥३॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्णविह्वलाम् ॥४॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठते ऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥५॥

ऋषिरुवाच ॥६॥

* ऐं इति ग पुस्तके ।

ॐ ऐं त्रीं नमः७। ॐ ऐं कलीं नमः८।
 ॐ ऐं प्रीं नमः९। ॐ ऐं ह्रीं नमः१०।
 ॐ ऐं हौं नमः११। ॐ ऐं श्रौं नमः१२।
 ॐ ऐं ऐं नमः१३। ॐ ऐं ओं नमः१४।
 ॐ ऐं श्रीं नमः१५। ॐ ऐं क्रां नमः१६।

तेनाजप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
 वृतः षष्ठ्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥७॥
 स द्युवा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
 जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुभ्मनिशुभ्मयोः॥८॥
 न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भतरिमुपैष्यति ।
 ततो बलान्नयाम्येष के शाकर्षणविह्लाम्॥९॥

देव्युवाच ॥१०॥

दैत्ये श्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
 बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम्॥११॥

ऋषिरुवाच ॥१२॥

इत्युक्तः सोऽध्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
 हुक्कारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः॥१३॥
 अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
 वर्वर्षं सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः॥१४॥
 ततो धुतस्टः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
 पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः॥१५॥
 कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
 आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान्॥१६॥

१. एं इति ख पुस्तके, श्रीं इति पाठान्तरम् । २. क्रीं इति पाठान्तरम् ।

३० ऐं हूं नमः१७। ३० ऐं छां कलीं नमः१८।
 ३० ऐं क्षक्तर्लीं नमः१९। ३० ऐं ल्लूँ नमः२०।
 ३० ऐं सौ* नमः२१। ३० ऐं हौं नमः२२।
 ३० ऐं क्रूं नमः२३। ३० ऐं सौ* नमः२४।

‘३० श्रीं यं हीं कलीं हीं फट् स्वाहा’

इति षष्ठोऽध्यायः

के षांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि के सरी ।
 तथा तलप्रहरेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१७॥
 विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
 पपौ च सधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१८॥
 क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
 तेन के सरिणा देव्या वाहने नातिकोपिना ॥१९॥
 श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
 बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीके सरिणा ततः ॥२०॥
 चुकोप दैत्याधिपतिः शुभ्मः प्रस्फुरिताधरः ।
 आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥२१॥
 हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
 तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥२२॥
 केशोष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
 तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥२३॥
 तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
 शीघ्रमागम्यतां बद्धा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
 शुभ्मनिशुभ्म—सेनानीषूम्रलोचनवधो नाम् षष्ठोऽध्यायः ॥१६॥

३. छां इति ख—ग पुस्तके । ४. लूं इति पाठान्तरम् । * सौः इति ग पुस्तके ।
 ५. हां इति ख पुस्तके, महीं इति पाठान्तरम् । ६. सां ख पुस्तके, स्हां इति पाठान्तरम् ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्गिं सरोजे शशिशकलधरा वल्लकीं वादयन्तीम्।
कहाराबद्धमाला नियमितविलसच्चोलिका रक्तवस्त्रा
मातझीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्धासिभालाम्॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१। ॐ ऐं कूं नमः२।
ॐ ऐं हीं नमः३। ॐ ऐं हं नमः४।
ॐ ऐं मूं नमः५। ॐ ऐं त्रौं नमः६।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

आज्ञाप्तास्ते ततो दैत्याश्छण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः॥२॥
दद्षुस्ते ततो देवीमीर्णद्वासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशङ्के महति काञ्चने॥३॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीफ्नाः॥४॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मणीवर्णमभूतदा॥५॥
भूकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी॥६॥

१. कुं इति ख—ग पुस्तके।

ॐ ऐं हौं* नमः७। ॐ ऐं ओ नमः८।
 ॐ ऐं हसूं नमः९। ॐ ऐं क्लूं नमः१०।
 ॐ ऐं केै नमः११। ॐ ऐं नेै नमः१२।
 ॐ ऐं लूं नमः१३। ॐ ऐं हस्लीं नमः१४।
 ॐ ऐं प्लूं नमः१५। ॐ ऐं शाै नमः१६।



विचित्रखाट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
 द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमासातिभैरवा॥७॥
 अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
 निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥८॥
 सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
 सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम्॥९॥
 पाण्डिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघणटासमन्वितान्।
 समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्॥१०॥
 तथैव योध तुरगै रथ सारथिना सह।
 निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्वर्यन्त्यिभैरवम्॥११॥
 एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
 पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्॥१२॥
 तैर्मुक्तानि च शास्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
 मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि॥१३॥
 बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
 मसर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्था॥१४॥
 असिना निहिताः केचित्केचित्खाट्वाङ्गताङ्गिताः।
 जगमुर्विनाशमसुरां दन्ताग्राभिहतास्तथा॥१५॥
 क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
 द्वृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्॥१६॥

* हाँ, हौं च ग पुस्तके। २. हसूं इति पाठान्तरम्। ३. क्रै इति ग पुस्तके, क्रै इति पाठान्तरम्।
४. नूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्लूं नमः १७। ॐ ऐं प्लीं नमः १८।
 ॐ ऐं प्रैं नमः १९। ॐ ऐं अं नमः २०।
 ॐ ऐं औं नमः २१। ॐ ऐं म्लीं नमः २२।
 ॐ ऐं श्रां नमः २३। ॐ ऐं सौं नमः २४।

शारवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
 छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥१७॥
 तानि चक्राण्यने कानि विशमानानि तन्मुखाम्।
 बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥१८॥
 ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
 काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्जवला ॥१९॥
 उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत् ।
 गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥२०॥
 अथ मुण्डोऽभ्यधावतां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
 तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥२१॥
 हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
 मुण्डं च सुमहावीर्य दिशो भेजे भयातुरम् ॥२२॥
 शिरक्षण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
 प्राह प्रचण्डाङ्गहासमिश्रमध्येत्य चण्डिकाम् ॥२३॥
 मया तवात्रोपहतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
 युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥२४॥

५. प्रें इति ख—ग पुस्तके, व्रें इति पाठान्तरम्। ६. ओं इति पाठान्तरम्।
 ७. ल्लां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं हौं* नमः७। ॐ ऐं ओं नमः८।
 ॐ ऐं हसूं नमः९। ॐ ऐं क्लूं नमः१०।
 ॐ ऐं केै नमः११। ॐ ऐं नेै नमः१२।
 ॐ ऐं लूं नमः१३। ॐ ऐं हस्लीं नमः१४।
 ॐ ऐं प्लूं नमः१५। ॐ ऐं शां नमः१६।

विचित्रखाद्वाङ्घरा नरमालाविभूषणा।
 द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमासातिभैरवा॥७॥
 अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
 निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥८॥
 सा वेगेनाभिपतिता धातयन्ती महासुरान्।
 सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम्॥९॥
 पाण्डिर्ग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
 समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्॥१०॥
 तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
 निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्॥११॥
 एकं जग्राह केशो शु ग्रीवायामथं चापरम्।
 पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्॥१२॥
 तैर्मुक्तानि च शास्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
 मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि॥१३॥
 बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
 मसदा भक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयन्तथा॥१४॥
 असिना निहिताः केचित्केंचित्खाद्वाङ्गताडिताः।
 जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा॥१५॥
 क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
 दृश्वा चण्डोजभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्॥१६॥

* हाँ, हाँ च ग पुस्तके। २. हसूं इति पाठान्तरम्। ३. क्रें इति ग पुस्तके, क्रैं इति पाठान्तरम्।
४. नूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं स्लूं नमः१७। ॐ ऐं पर्लीं नमः१८।
 ॐ ऐं प्रैं नमः१९। ॐ ऐं अं नमः२०।
 ॐ ऐं ओं नमः२१। ॐ ऐं म्लीं नमः२२।
 ॐ ऐं श्रां नमः२३। ॐ ऐं सौं नमः२४।

शारवणैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं ता महासुरः।
 छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः॥१७॥
 तानि चक्राण्यनेकानि विशामानानि तन्मुखाम्।
 बभुर्यथार्कविम्बानि सुबहूनि घनोदरम्॥१८॥
 ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
 काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला॥१९॥
 उत्थाय च महासि हं देवी चण्डमधावत् ।
 गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्॥२०॥
 अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
 तमप्यपातयद्दूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा॥२१॥
 हतशोषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
 मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्॥२२॥
 शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
 प्राह प्रचण्डाङ्गासमिश्रमध्येत्य चण्डिकाम्॥२३॥
 मया तवात्रोपहतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
 युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि॥२४॥

५. प्रैं इति ख—ग पुस्तके, व्रैं इति पाठान्तरम्। ६. ओं इति पाठान्तरम्।
 ७. ल्लां इति ख पुस्तके।

ॐ ऐं श्रौं नमः२५। ॐ ऐं प्रीं नमः२६।

ॐ ऐं हस्त्रीं नमः२७।

‘ॐ रं रं रं कं कं जं जं जं चामुण्डायै फट् स्वाहा’

इति सप्तमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच ॥२५॥

तावानीतौ ततो दृश्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥२६॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ ॐ ॥२७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुण्डे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥



अथ अथाष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१ । ॐ ऐं म्हल्लीं नमः२ ।
ॐ ऐं प्रौं नमः३ । ॐ ऐं ऐं नमः४ ।
ॐ ऐं क्रोः नमः५ । ॐ ऐं ईः नमः६ ।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥२॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुद्धभः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वं सैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥३॥

अद्य सर्वं बलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चेतुरशीतिर्निर्यन्तु स्वबलैर्वृताः ॥४॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशादसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५॥
कालका दौर्हदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यन्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥६॥

१. प्रं इति ख पुस्तके । २. एं ख पुस्तके, यं इति पाठान्तरम् ।
३. क्रौं इति पाठान्तरम् । ४. इं इति ख पुस्तके ।

ॐ ऐं ऐं^५ नमः७। ॐ ऐं ल्री^{*१} नमः८।
 ॐ ऐं क्रो^{*२} नमः९। ॐ ऐं म्लू^६ नमः१०।
 ॐ ऐं नो^७ नमः११। ॐ ऐं हूं नमः१२।
 ॐ ऐं क्री^८ नमः१३। ॐ ऐं ग्लौ^९ नमः१४।
 ॐ ऐं स्मौ^{१०} नमः१५। ॐ ऐं सौ^{११} नमः१६।

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुभो भैरवशासनः।
 निर्जगाम महासैन्यसहस्रबहुभिर्वृतः॥७॥
 आयान्त चण्डका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
 ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्॥८॥
 ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
 घण्टास्वनेन तत्रादमस्तिका चोपबृहयत्॥९॥
 धनुज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा।
 निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना॥१०॥
 तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यैसैन्यैश्चतुर्दिशम्।
 देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः॥११॥
 एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
 भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः॥१२॥
 ब्रह्मेशागुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
 शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डकां ययुः॥१३॥
 यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
 तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योदधुमाययौ॥१४॥
 हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
 आयाता ब्रह्मणः शक्ति ब्रह्माणी साभिर्धीयते॥१५॥
 माहेश्वरी वृषारुढा त्रिशूलवरधारिणी।
 महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा॥१६॥

५. एं ख पुस्तके, क्रूं इति पाठान्तरम्। *१ लं इति ग पुस्तके। *२ क्रों इति ग पुस्तके।
 ६. ब्लूं इति ख पुस्तके। ७. त्रौं इति पाठान्तरम्। ८. क्रौं इति ख—ग पुस्तके।
 ९. सौं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्री^{१०} नमः१७। ॐ ऐं स्हौ^{११} नमः१८।
 ॐ ऐं ख्से^{१२} नमः१९। ॐ ऐं क्ष्म्लीं नमः२०।
 ॐ ऐं हां* नमः२१। ॐ ऐं वीं नमः२२।
 ॐ ऐं लू^{१३} नमः२३। ॐ ऐं ल्सी^{१४} नमः२४।
 ॐ ऐं ब्लो^{१५} नमः२५। ॐ ऐं त्सो^{१६} नमः२६।

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवस्वाहना।
 योद्धुमध्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी॥१७॥
 तथैव वैष्णवी शक्तिरुडोपरि संस्थिता।
 शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखडगहस्ताभ्युपाययौ॥१८॥
 यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभृतो हरेः।
 शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभृती तनुम्॥१९॥
 नारसिंही नृसिंहस्य बिभृती सद्वशं वपुः।
 प्राप्ता तत्र सटाक्षे पक्षिपत्नक्षत्रसंहतिः॥२०॥
 वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
 प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा॥२१॥
 ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
 हन्यन्तामसुरा: शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽहं चण्डिकाम्॥२२॥
 ततो देवीशारीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
 चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी॥२३॥
 सा चाह धूमजटिलमीशानमपराजिता।
 दूतत्वं गच्छ भगवन् पाश्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥२४॥
 बूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगवितौ।
 ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः॥२५॥
 त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
 यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥२६॥

१०. क्रू इति पाठान्तरम्। ११. क्लीं इति णाठान्तरम्। १२. ख्सं ख पुस्तके, श्रीं इति पाठान्तरम्। * हाँ इति ग पुस्तके। १३. लं इति ख पुस्तके। १४. स्लीं इति ग पुस्तके, ल्सां इति पाठान्तरम्। १५. ब्लीं इति ख—ग पुस्तके। १६. सां इति पाठान्तरम्।

- ३० ऐं बूँ^{१७} नमः२७। ३० ऐं श्लकी^{१८} नमः२८।
 ३० ऐं श्रूं नमः२९। ३० ऐं हीं नमः३०।
 ३० ऐं शीं नमः३१। ३० ऐं कलीं नमः३२।
 ३० ऐं कलौं नमः३३। ३० ऐं प्रू^{*} नमः३४।
 ३० ऐं हूं नमः३५। ३० ऐं कलूं नमः३६।
-

बलावले पादथ चेद्वन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
 तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः॥२७॥
 यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
 शिवदूतीति लोकेऽस्मिस्ततः सा ख्यातिमागता॥२८॥
 तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
 अमष्टपूरिता जग्मुयत्र कात्यायनी स्थिता॥२९॥
 ततः प्रथममे वाग्ने शारशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
 ववर्षुरुद्धत्तामणास्ता देवीममरारयः॥३०॥
 सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
 चिच्छेद लीलयाऽऽध्यातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः॥३१॥
 तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
 खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरतदा॥३२॥
 कमण्डलुजलाक्षोपहतवीर्यान् हतौजसः।
 ब्रह्माणी चाकरोच्छब्रून् येन येन स्म धावति॥३३॥
 माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी।
 दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना॥३४॥
 ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
 पेतुविदारिताः पृथ्यां रुधिरैघप्रवर्षिणः॥३५॥
 तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
 वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥३६॥

१७. बूं इति ख पुस्तके। १८. श्लकां ख पुस्तके, शक्तीं-शक्लीं च इति ग पुस्तके,
 श्लर्णी इति पाठान्तरम्। * श्रूं इति ग पुस्तके।

ॐ ऐं तौ^{१९} नमः३७। ॐ ऐं म्लू^{२०} नमः३८।
 ॐ ऐं हं^{२१} नमः३९। ॐ ऐं स्लूं नमः४०।
 ॐ ऐं औ^{२२} नमः४१। ॐ ऐं ल्ही^{२३*} नमः४२।
 ॐ ऐं श्लरी^{२४} नमः४३। ॐ ऐं यां^{२५} नमः४४।
 ॐ ऐं थ्ली^{२६} नमः४५। ॐ ऐं ल्ही* नमः४६।

नखैविदारितांशान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्।
 नारसिंहो चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा॥३७॥
 चण्डाङ्गहासैरसुरा: शिवदूत्यभिदूषिताः।
 पेतुः पृथिव्या पतितांस्तांश्खादाथ सा तदा॥३८॥
 इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
 दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः॥३९॥
 पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान्।
 योद्धुमध्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः॥४०॥
 रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
 समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः॥४१॥
 युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्यां महासुरः।
 ततश्चैन्द्री स्ववज्जेण रक्तबीजमताडयत्॥४२॥
 कुलिशोनाहतस्याशु बहु सुखाव शोणितम्।
 समुत्तस्थुस्ततो योधास्तदूपास्तत्पराक्रमाः॥४३॥
 यावन्तः पतितास्तस्य शरीरादक्तबिन्दवः।
 तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीयबलविक्रिमाः॥४४॥
 ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
 समं मातृभिस्त्युग शस्त्रपातातिभीषणम्॥४५॥
 एुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
 ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः॥४६॥

१९. तां ख—ग पुस्तके, स्तां इति पाठान्तरम्। २०. म्लं ख पुस्तके, कर्लीं इति पाठान्तरम्। २१. कर्लीं इति पाठान्तरम्। २२. ओं इति पाठान्तरम्। २३. ल्हैं इति ख, हौं इति ग पुस्तके। २४. स्लरीं ख, श्लरीं इति ग पुस्तके। २५. कर्लीं इति ग पुस्तके। २६. क्लरीं इति ग पुस्तके, श्लरीं इति पाठान्तरम्। * हौं इति ग पुस्तके।

३० ऐं ग्लौ^{२७} नमः४७। ३० ऐं हौं नमः४८।
 ३० ऐं प्रा^{२८} नमः४९। ३० ऐं क्री^{२९} नमः५०।
 ३० ऐं कलीं नमः५१। ३० ऐं स्लू^{*} नमः५२।
 ३० ऐं ही^{३०} नमः५३। ३० ऐं हौं^{३१} नमः५४।
 ३० ऐं हैं नमः५५। ३० ऐं श्र^{३२} नमः५६।

वैष्णवी समरे चैन चक्रेणाभिजाघान ह।
 गदया ताडयामास ऐन्दी तमसुरेश्वरम् ॥४७॥
 वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्तावसम्भवै ।
 सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४८॥
 शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
 माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४९॥
 स चापि गदया दैत्याः सर्वा एवाहनत् पृथक्।
 मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥५०॥
 तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
 पपात यो वै रक्तौधस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५१॥
 तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
 व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५२॥
 तान् विषण्णान् सुरान् दृश्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।
 उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५३॥
 मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
 रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५४॥
 भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पत्त्रान्महासुरान्।
 एवमेष क्षय दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५५॥
 भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
 इत्युक्त्वा तां ततो देवीं शूलेनाभिजघान तम् ॥५६॥

२७. ग्लौ इति पाठान्तरम्। २८. श्रा इति पाठान्तरम्। २९. क्री इति पाठान्तरम्।

* स्लूं इति ग पुस्तके। ३०. हीं इति ग पुस्तके। ३१. ल्हौं ख पुस्तके, स्लूं इति पाठान्तरम्।

३२. श्रूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सौं नमः५७। ॐ ऐं श्रीं नमः५८।
 ॐ ऐं सूं* नमः५९। ॐ ऐं द्रौं नमः६०।
 ॐ ऐं स्त्रां* नमः६१। ॐ ऐं हस्त्रीं नमः६२।
 ॐ ऐं स्त्रलीं* नमः६३।

‘ॐ शां सं श्रीं श्रं अं अः कर्लीं ह्रीं फट् स्वाहा’

इत्यष्टमोऽध्यायः

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।
 ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम्॥५७॥।
 न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽलिपकामपि।
 तस्याहतस्य दैहातु बहु सुखाव शोणितम्॥५८॥।
 यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
 मुखे समुद्रता येऽस्या रक्तपातान्महोसुराः॥५९॥।
 तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्।
 देवी शूलेन वञ्जेण बाणैरसिभिर्घृष्टिभिः॥६०॥।
 जघान रक्तबीजं त चामुण्डापीतशोणितम्।
 स पपात महीपृष्ठे शास्त्रसङ्ख्यसमाहतः॥६१॥।
 नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
 ततस्ते हर्षमतुलमवापु नृष्टिदशा नृप॥६२॥।
 तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्गमदोद्धतः॥६३॥।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्त्रन्तरे
देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः॥६४॥।



* स्त्रूं इति ग पुस्तके। ** स्त्रां इति ग पुस्तके। *** स्त्रलीं इति ग पुस्तके।

अथ नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

३० बन्धुककाञ्चननिभं सचिराक्षमालां पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
विश्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रमधीम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयमि॥

३० ऐं रौं नमः१। ३० ऐं क्लीं नमः२।
३० ऐं म्लौं नमः३। ३० ऐं श्रौं नमः४।
३० ऐं ग्लीं^३ नमः५। ३० ऐं हौं नमः६।
३० ऐं हूसौ* नमः७। ३० ऐं ईं नमः८।

३० राजोवाच ॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्वरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥२॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुभ्मो यत्कर्म निशुभ्मश्चातिकोपनः ॥३॥

ऋषिरुवाच ॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुभ्मासुरो निशुभ्मश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥५॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्धन् ।
अभ्यधावन्निशुभ्मोऽथ मुख्यासुरसेनया ॥६॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पाश्वर्योक्षं महासुराः ।
संदष्टैष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७॥
आजगाम महावीर्यः शुभ्मोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८॥

१. ग्लौं इति पाठान्तरम्। २. श्रौं इति ख, श्रीं इति ग पुस्तके।

३. ग्लौं इति पाठान्तरम्। * स्हौं इति ग पुस्तके।

३० ऐं बूँ नमः१। ३० ऐं श्रां नमः१०।
 ३० ऐं लू नमः११। ३० ऐं आौ नमः१२।
 ३० ऐं श्री नमः१३। ३० ऐं क्रों नमः१४।
 ३० ऐं प्रू नमः१५। ३० ऐं कलीं नमः१६।
 ३० ऐं श्रै नमः१७। ३० ऐं हौ९ नमः१८।

ततो युद्धमतीवासीदेव्या शुभनिशुभयोः ।
 शरवर्जमतीवोग्य मेघयोरिव वर्जतोः ॥१९॥
 चिछेदास्ताङ्गरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
 ताडयामास चाङ्गेषु शख्खैरसुरेश्वरौ ॥२०॥
 निशुभो निशितं खडगं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
 अताडयन्मूर्धि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥२१॥
 ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
 निशुभस्याशु चिछेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥२२॥
 छिन्ने चर्मणि खडगे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
 तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥२३॥
 कोपाध्मातो निशुभोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
 आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥२४॥
 आविष्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
 सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥२५॥
 ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
 आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतङ्गे ॥२६॥
 तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुभे भीमविक्रमे ।
 भ्रातर्यतीव संकुद्धः प्रययौ हन्तुमन्विकाम् ॥२७॥
 स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
 भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशोषं बभौ नभः ॥२८॥

४. वूँ इति पाठान्तरम्। ५. श्रां इति पाठान्तरम्।

६. हं इति ख पुस्तके, भूँ इति ग पुस्तके। ७. हीं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्रीं नमः१९। ॐ ऐं म्लीं नमः२०।
 ॐ ऐं ग्लौं नमः२१। ॐ ऐं हसूं नमः२२।
 ॐ ऐं ल्पीं नमः२३। ॐ ऐं हौं नमः२४।
 ॐ ऐं हस्त्रा॑ं नमः२५। ॐ ऐं स्हौं नमः२६।
 ॐ ऐं ल्लौं नमः२७। ॐ ऐं क्स्लीं नमः२८।

तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
 ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१९॥
 पूरयामास ककुभो निजघणटास्वनेन च ।
 समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥
 ततः सिंहो महानादै स्त्याजिते भमहामदैः । ।
 पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥२१॥
 ततः कालीं समुत्पत्त्य गगनं क्षमामताडयत् ।
 कराभ्यां तत्रिनादेन प्राकस्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२॥
 अद्वाङ्गुहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
 तैः शब्दरसुराख्लेसुः शुभः कोप पर ययौ ॥२३॥
 दुरात्मस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
 तदा जयैत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२४॥
 शुभेनागत्य या शक्तिरुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
 आयान्ती वहिकूटाभा सा निरस्ता महोल्क्या ॥२५॥
 सिंहनादेन शुभस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
 निर्धातनि स्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥
 शुभमुक्ता छ्वान्दे वीं शुभस्तत्रहिताञ्छ्वान् ।
 चिच्छेद स्वशरूप्रैः शतशर्णीथ सहस्रशः ॥२७॥
 ततः सा चण्डिका कुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
 स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात्त ह ॥२८॥

८. म्लीं इति ख—ग पुस्तके । ९. ह्लां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं श्रीं नमः२९। ॐ ऐं स्तूं नमः३०।
 ॐ ऐं चे नमः३१। ॐ ऐं वीं नमः३२।
 ॐ ऐं क्ष्लूं नमः३३। ॐ ऐं श्लूं नमः३४।
 ॐ ऐं क्रूं नमः३५। ॐ ऐं क्रां नमः३६।

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
 आजधान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥
 पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
 चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥
 ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
 चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥
 ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
 अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥
 तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
 खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥
 शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भेमरादनम् ।
 हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥
 भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्त्रिःसृतोऽपरः ।
 महाबलो महावीर्यस्त्रिर्वेति पुरुषो वदन् ॥३५॥
 तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
 शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्वुवि ॥३६॥

१०. कं इति खं पुस्तके।

ॐ ऐं हौ०” नमः३७। ॐ ऐं क्रां नमः३८।
 ॐ ऐं स्कली०” नमः३९। ॐ ऐं सू०” नमः४०।
 ॐ ऐं फ्रू०” नमः४१।
 ‘ॐ ऐं हीं श्रीं सौं फट् स्वाहा’
 इति नवमोऽध्यायः

ततः सिंहश्चखादोग्रं दद्वाक्षुण्णशिरोधरान् ।
 असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥
 कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः के चिन्ने शुर्महासुराः ।
 ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३८॥
 माहेश्वरीत्रिशूले न भिन्नाः पे तु स्तथापरे ।
 वाराहीतुण्डघातेन केचिच्छूर्णकृता भुवि ॥३९॥
 खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
 वज्रेण चैन्दीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥
 के चिद्विने शुरसुराः के चिन्नष्टा महाहवात् ।
 भक्तिश्चापरे कालीशिवदूतीमृगधिपै ॥३५॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्त्रन्तरे
 देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥१९॥



११. हां इति ख पुस्तके। १२. स्लीं इति पाठान्तरम्।
 १३. एं ख पुस्तके, फ्रूं ग पुस्तके, कर्लीं इति पाठान्तरम्। १४. फ्रूं इति ख पुस्तके।

अथ दशमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्निनेत्रां
घनुशशारयुताङ्कशपाशाशूलम्।
रम्यैर्भूजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

ॐ ऐं श्रौँ* नमः१। ॐ ऐं हीं नमः२।
ॐ ऐं ब्लूँ॒ नमः३। ॐ ऐं हीं नमः४।
ॐ ऐं म्लूँ॒ नमः५। ॐ ऐं श्रौँ नमः६।

ऋषिरुवाच ॥१॥

निशुम्भं निहतं दृस्त्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुभ्यः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥२॥
बलावले पाहुषे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे सातिमानिनी ॥३॥

देव्युवाच ॥४॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥५॥

ऋषिरुवाच*

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जंगमुरेकैवासीत्तदम्बिका ॥६॥

* श्री इति ग पुस्तके १. हा ख पुस्तके, हीं इति पाठान्तरम्।

२. व्लू ख पुस्तके, वू इति पाठान्तरम्। * ख पुस्तक में संख्या ६ में 'ऋषिरुवाच' अतिरिक्त पाठ है जिसके लिए मूल पुस्तक के संख्या ६ का बीजमंत्र श्रौँ उपयुक्त है।

ॐ ऐं ही^३ नमः७। ॐ ऐं गली^४ नमः८।
 ॐ ऐं श्रौ^५ नमः९। ॐ ऐं धू^६ नमः१०।
 ॐ ऐं हु^{*} नमः११। ॐ ऐं द्रौ^७ नमः१२।
 ॐ ऐं श्री^८ नमः१३। ॐ ऐं श्रू^९ नमः१४।
 ॐ ऐं ब्रू^{१०} नमः१५। ॐ ऐं फ्रे^{११} नमः१६।

देव्युवाच ॥७॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
 तत्संहतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥८॥

ऋषिरुवाच ॥९॥

ततः प्रववृते युद्धे देव्या रुपस्य चोभयोः ।
 पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥१०॥
 शरवर्णैः शितैः शास्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
 तयोर्युद्धमधूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥
 दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
 बभञ्ज तानि दैत्येन्दस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥१२॥
 मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
 बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोऽचारणादिभिः ॥१३॥
 ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
 सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिंच्छेद वेषुभिः ॥१४॥
 छिन्ने धनुषिं दैत्येन्दस्तथा शक्तिमथाददे ।
 चिंच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥१५॥
 ततः खाद्यगमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
 अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१६॥

३. हुं इति पाठान्तरम्। ४. गली इति पाठान्तरम्। ५. हं इति ख—ग पुस्तके।

६. धं इति ख, ऐं इति ग पुस्तके। * हुं इति ग पुस्तके। ७. श्री इति पाठान्तरम्।

८. ब्रूं इति ख—ग पुस्तके।

ॐ ऐं हां नमः१७। ॐ ऐं जुं नमः१८।
 ॐ ऐं स्त्रौं नमः१९। ॐ ऐं स्लूं नमः२०।
 ॐ ऐं प्रे नमः२१। ॐ ऐं हस्वा० नमः२२।
 ॐ ऐं प्रीं नमः२३। ॐ ऐं फ्रा० नमः२४।
 ॐ ऐं क्रीं नमः२५। ॐ ऐं श्रीं नमः२६।

तस्यापतत एवाशु खइगं चिच्छेद चण्डिका ।

धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चार्म चार्ककरामलम् ॥१७॥

हताशः स तदा दैत्यशिङ्गधन्वा विसारथिः ।

जग्राह मुद्ररं घोरमभिकानिधनोद्यतः ॥१८॥

चिच्छेदापततस्तस्य मुदगरं निशितैः शरैः ।

तथापि सोऽभ्यधवतां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।

देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥

तलप्रहाराभिहतो निषपात महीतले ।

स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥

उत्पत्त्य च प्रगृह्णोच्चैर्देवीं र्गग्नमास्थितः ।

तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।

चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥२३॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाभिका सह ।

उत्पात्य भ्रामयामास विक्षेप धरणीतले ॥२४॥

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।

अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छ्या ॥२५॥

तमायान्तं ततो देवीं सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।

जगत्यां पातयामास भित्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥

९. सौं इति ख, सौः इति ग पुस्तके। १०. हां इति पाठान्तरम्।

११. फां इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्रां नमः॒२७। ॐ ऐं सः नमः॒२८।
 ॐ ऐं कलीं नमः॒२९। ॐ ऐं द्वे॑३ नमः॒३०।
 ॐ ऐं ई॑४ नमः॒३१। ॐ ऐं ज्ञह्ल्लां॑ नमः॒३२।
 ॐ ऐं ज्ञह्लीं॑ नमः॑५

‘ॐ ऐं हीं नमः कलीं हीं फट् स्वाहा’

इति दशमोऽध्यायः

स गतासुः पपातोव्या॑ देवीशूलाग्रविक्षतः ।
 चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२७॥
 ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
 जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवत्रभः ॥२८॥
 उत्पातमेघाः सोल्का ये प्राणासंस्ते शमं ययुः ।
 सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥
 ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
 बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥३०॥
 अवादयस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
 ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्विवाकरः ॥३१॥
 जज्वलुश्चान्यशान्ताः शान्ता दिंजनितस्वनाः ॥३२॥५

इति श्रीमार्कण्डेयपुणे सार्वर्णिके मन्त्रनरे देवीमाहात्म्ये
 निशुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥



१२. हें इति ख पुस्तके। १२. इ इति ख-ग पुस्तके। 'स्हलीं ग' पुस्तके।
 ख पुस्तक में -'३' के लिए तथा -'५' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

अथ एकादशोऽध्यायः

छ्यानम्

बालरविद्युतिभिन्दुकिरीटां, तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

ॐ ऐं श्रौं नमः१ । ॐ ऐं क्रूं नमः२ ।
ॐ ऐं श्रीं नमः३ । ॐ ऐं ललींृ नमः४ ।

ऋषिरुवाच ॥१॥

देव्या	हते	तत्र	महासुरेन्दे
सेन्दाः	सुरा	वहिषुरोगमास्ताम्	
कात्यायनीं		तुष्टुवुरिष्टलाभाद्	
विकाशिवक्त्राङ्गविकाशिताशाः			॥२॥
देवि	प्रपञ्चातिहरे		प्रसीद
प्रसीद	मातर्जगतोऽखिलस्य		
प्रसीद	विश्वेश्वरि	पाहि	विश्वं
त्वमीश्वरी	देवि	चराचरस्य	॥३॥
आधारभूता			जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण	यतः		स्थितासि
अपा	स्वरूपस्थितंया		त्वयैत-
दाप्यायते	कृत्स्नमलङ्घयवीये		॥४॥

१. श्रां इति पाठान्तरम् । २. कुं इति पाठान्तरम् । ३. ललीं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं प्रे नमः५। ॐ ऐं सौ४ नमः६।
 ॐ ऐं स्हौ५ नमः७। ॐ ऐं श्रू८ नमः८।
 ॐ ऐं कली९ नमः९। ॐ ऐं स्कली१० नमः१०।
 ॐ ऐं प्री११ नमः११। ॐ ऐं ग्लौ१२ नमः१२।

•••••

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
 विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
 सम्मोहित देवि समस्तमेतत्
 त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥
 विद्या॒ समस्तास्तव देवि भेदा॑
 स्थियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
 त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
 का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥६॥
 सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
 त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥७॥
 सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
 स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥८॥
 कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
 विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९॥
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये * शिवे सर्वार्थसाधिके ।
 शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥
 सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
 गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
 शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
 सर्वस्यात्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥

४. सौः इति ख पुस्तके। * 'मङ्गल्ये' इति क्वचित् पाठः।

ॐ ऐ हही^५ नमः१३। ॐ ऐ स्तौ नमः१४।
 ॐ ऐं कली^६ नमः१५। ॐ ऐं म्ली^७ नमः१६।
 ॐ ऐं स्तू^{*८} नमः१७। ॐ ऐं ज्वहीं^{*९} नमः१८।
 ॐ ऐं फ्र० नमः१९। ॐ ऐं क्र० नमः२०।
 ॐ ऐं हीं नमः२१। ॐ ऐं ल्ल० नमः२२।

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
 कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
 त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
 माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥
 मयूरकुक्कुटवृत्ते महाशक्तिधरेऽनघे ।
 कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥
 शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गहीतपरमायुधे ।
 प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१६॥
 गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धतवसुधरे ।
 वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥
 नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
 वैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥
 किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
 वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥
 शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
 घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥
 दंष्ट्राकरालवदने शिरो मालाविभूषणे ।
 चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥
 लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे धूवे ।
 महारोत्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥

५. ख पुस्तके, स्त्रीं ग पुस्तके। (क पुस्तके बीजमत्रं नास्ति)

६. लीं इति ख, जीं इति ग पुस्तके। ७. गर्लीं इति पाठान्तरम्।

*८ जस्त्रीं इति ग पुस्तके, *९ स्तूं इति ग पुस्तके। ८. फ्रं ख पुस्तके, फ्लूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्षमीं नमः२३। ॐ ऐं श्रूं नमः२४।
 ॐ ऐं इं नमः२५। ॐ ऐं जुं नमः२६।
 ॐ ऐं त्रैं नमः२७। ॐ ऐं द्रूं नमः२८।
 ॐ ऐं हौं नमः२९। ॐ ऐं क्लीं नमः३०।

मेर्धे सरस्वति वरे भूति बाभ्वि तामसि ।
 नियते त्वं प्रसीदेशो नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३॥
 सर्वस्वरूपे सर्वेशो सर्वशक्तिसमन्विते ।
 भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४॥
 एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
 पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५॥
 ज्वालाकरालमत्युग्रमशोषासुरसूदनम् ।
 व्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६॥
 हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
 सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥२७॥
 असुरासंग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्जवलः ।
 शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वा नता वयम् ॥२८॥
 रोगानशोषानपहसि तुष्टा
 रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
 त्वामाश्रितानां न विपन्नराणा
 त्वामाश्रिता ह्याश्रयता प्रयान्ति ॥२९॥
 एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
 धर्मद्विषां देवि महोसुराणाम् ।
 रूपैरनेकबृहुषाऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्पकरेति कान्या ॥३०॥

९. श्र इति ख पुस्तके । १०. दू ख-ग पुस्तके, दु इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं सूं नमः ३१। ॐ ऐं हौं^{११} नमः ३२।
 ॐ ऐं श्वर^{१२} नमः ३३। ॐ ऐं बूं* नमः ३४।
 ॐ ऐं फा^{१३} नमः ३५। ॐ ऐं हीं नमः ३६।
 ॐ ऐं ल^{१४} नमः ३७। ॐ ऐं हसा^{१५} नमः ३८।

• • •

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे —
 ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
 ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१॥
 रक्षांसि यत्रोग्निषाश नागा
 यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
 दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
 तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२॥
 विशेष्वरि त्वं परिपासि विश्वं
 विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
 विश्वेशावन्द्या भवती भवन्ति
 विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनमः ॥३३॥
 देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते —
 र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
 पापानि सर्वजगतां प्रशाम नयाशु
 उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४॥
 प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
 त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५॥

देव्युवाच ॥३६॥

वरदाहं सुरणा वरं यन्मनसे च्छथ ।
 तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३७॥

देवा ऊचः ॥३८॥

११. हीं इति पाठान्तरम् । १२. श्वं इति ख पुस्तके, श्वूं इति पाठान्तरम् ।

* बूं इति ग पुस्तके । १३. श्वं ख पुस्तके, श्वूं इति ग पुस्तके, स्हलूं इति पाठान्तरम् ।

१४. लूं इति पाठान्तरम् । १५. हसौं इति ग पुस्तके, स्तौं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं सें नमः३९। ॐ ऐं हीं नमः४०।
 ॐ ऐं हौं१६ नमः४१। ॐ ऐं विं नमः४२।
 ॐ ऐं लीं नमः४३। ॐ ऐं क्ष्म्लीं नमः४४।
 ॐ ऐं त्वा॑ नमः४५। ॐ ऐं प्र॑७ नमः४६।
 ॐ ऐं म्लीं१८ नमः४७। ॐ ऐं सू॑९ नमः४८।

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
 एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९॥

देव्युवाच ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे
 शुभ्मो निशुभ्मश्चैवान्यावुतप्तस्येते महासुरै ॥४१॥
 नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
 ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्याचलनिवासिनी ॥४२॥
 गुनरप्यतिरैद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
 अवतीर्थ हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥
 भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
 रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमा: ॥४४॥
 ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
 स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५॥
 भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
 मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा ॥४६॥
 ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
 कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४७॥
 ततोऽहमखिलं लोकमात्मदे हसमुद्भवैः ।
 भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥४८॥

१६. हुं इति ख, हीं इति ग पुस्तके। १७. मं इति पाठान्तरम्।

१८. म्लौं इति ग पुस्तके, गर्लीं इति पाठान्तरम्। १९. सूं इति पाठान्तरम्।

ॐ ऐं क्षमां नमः४९। ॐ ऐं स्तू१० नमः५०।
 ॐ ऐं स्ही११ नमः५१। ॐ ऐं श्री१२ नमः५२।
 ॐ ऐं क्रौ१३ नमः५३। ॐ ऐं श्रा॑ नमः५४।
 ॐ ऐं म्ली॑ नमः५५।

‘ॐ ऐं हीं क्लीं श्रीं सौं नमः फट् स्वाहा’

इति एकादशोऽध्यायः

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
 तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४९॥
 दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
 पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥५०॥
 रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
 तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानप्रमूर्तयः ॥५१॥
 भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
 यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥५२॥
 तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट् पदम् ।
 त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥
 भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
 इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५४॥
 तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥३०॥५५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
 देवीमाहात्म्ये देव्या॒ः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥५१॥

५

२०. प्लू॑ इति पाठान्तरम् । २१. स्क्री॑ इति पाठान्तरम् । २२. श्री॑ इति पाठान्तरम् ।
 २३. श्रौ॑ इति ग पुस्तके, त्रौ॑ इति पाठान्तरम् ।

अथ दादशोऽध्यायः

ध्यानम्

३० विद्युदामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखोटविलसद्वस्ताभिरासे विताम्
हस्तैश्चक्रगदासिखोटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिका शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे ॥

३० ऐं हीं नमः१ । ३० ऐं ओं नमः२ ।
३० ऐं श्रीं नमः३ । ३० ऐं ईं नमः४ ।
३० ऐं कलीं नमः५ । ३० ऐं क्रूं नमः६ ।

३० देव्युवाच ॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥१॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुभ्निशुभ्योः ॥२॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥३॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥४॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौधात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥५॥

१. औं इति पाठान्तरम् । २. ईं इति पाठान्तरम् । ३. क्रं इति ख पुस्तके ।

ॐ ऐं श्रूं नमः७।	ॐ ऐं प्रा॑ नमः८।
ॐ ऐं क्रू॑ नमः९।	ॐ ऐं दि॑ नमः१०।
ॐ ऐं फ्रे॑ नमः११।	ॐ ऐं हं नमः१२।
ॐ ऐं सः नमः१३।	ॐ ऐं चे॑ नमः१४।
ॐ ऐं सूं नमः१५।	ॐ ऐं प्री॑ नमः१६।

तस्मान्मैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।

श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥७॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमद्भवान् ।

तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८॥

यत्रैतत्पठते सम्यद्विनित्यमायतने मम ।

सदा न तद्विमोक्ष्यामि सानिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥९॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।

सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।

प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥११॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।

तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥१२॥

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।

मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१३॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।

पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।

नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृणवताम् ॥१५॥

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।

ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१६॥

४. क्रां इति पाठान्तरम् । ५. विं इति पाठान्तरम् । ६. फें इति ग पुस्तके, फ्रैं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं व्लूँ नमः१७। ॐ ऐं आं नमः१८।
 ॐ ऐं औं नमः१९। ॐ ऐं हीं* नमः२०।
 ॐ ऐं क्रीं नमः२१। ॐ ऐं द्रां० नमः२२।
 ॐ ऐं श्रीं नमः२३। ॐ ऐं स्लीं नमः२४।
 ॐ ऐं क्लीं नमः२५। ॐ ऐं स्लूँ० नमः२६।

उपसर्गः शाम् यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणा: ।
 दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१७॥
 बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
 संघातधेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१८॥
 दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
 रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१९॥
 सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ॥२०॥
 पशुपुष्पार्थ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः
 विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥२१॥
 अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या।
 प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ॥२२॥
 श्रुतं हरतिपापानि तथाऽरोग्यं प्रयच्छति ।
 रक्षा करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ॥२३॥
 युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ।
 तस्मिञ्छुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ॥२४॥
 युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मिभिः कृताः ।
 ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् २५॥
 अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ।
 दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥२६॥

७. लूँ इति पाठान्तरम्। ८. ओं इति पाठान्तरम्। * हीं इति ग पुस्तके।

९. क्लां इति ख पुस्तके। १०. हुं इति पाठान्तरम्। ११. स्लुँ इति पाठान्तरम्।

- ३० ऐं हीं नमः२७। ३० ऐं ल्लीं* नमः२८।
 ३० ऐं त्रो१२ नमः२९। ३० ऐं ओ१३ नमः३०।
 ३० ऐं श्रौं नमः३१। ३० ऐं ऐ१४ नमः३२।
 ३० ऐं प्रे१५ नमः३३। ३० ऐं द्रू१६ नमः३४।
 ३० ऐं कलू१७ नमः३५। ३० ऐं औं नमः३६।
-

सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ।

राजा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बध्यगतोऽपि वा ॥२७॥

आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ।

पतत्सु चापि शखेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥२८॥

सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ।

स्मरन्मैतच्चरितं नरो मुच्येत् सङ्कटात् ॥२९॥

मम प्रभावात्सहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ।

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच ॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ।

पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥३२॥

तेऽपि देवा निरातङ्गाः स्वाधिकारान् यथा पुरा ।

यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥३३॥

दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिप्तौ युधि ।

जगद्विद्वांसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥३४॥

निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।

सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥

* ल्लीं इति ग पुस्तके । १२. त्रौं इति पाठान्तरम् । १३. त्रं इति पाठान्तरम् ।

१४. एं इति पाठान्तरम् । १५. प्रैं इति पाठान्तरम् । १६. हुं इति पाठान्तरम् ।

१७. ल्लूं इति ग पुस्तके, लूं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं सू* नमः३७। ॐ ऐं चे४ नमः३८।
 ॐ ऐं है९ नमः३९। ॐ ऐं प्ली नमः४०।
 ॐ ऐं क्षा० नमः४१।

‘ॐ यं यं यं रं रं रं ठं ठं फट् स्वाहा’

इति द्वादशोऽध्यायः

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
 सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धि प्रयच्छति ॥३७॥
 व्याप्तं तथैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
 महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥
 सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
 स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३९॥
 भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वद्धिप्रदा गृहे ।
 सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीविनाशायोपजायते ॥४०॥
 स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
 ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गति शुभाम् ॥३८॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
 देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नामि द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥



* ख पुस्तक में बीजमंत्र फट गया है। १८. चें हूँ इति ख पुस्तके।
 १९. हूँ इति ख—ग पुस्तके। २०. क्षां इति पाठान्तरम्।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

- ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्ति॑ शिवां भजे ॥
- ॐ ऐं श्रौं॒ नमः॑१ । ॐ ऐं ब्रीं॒॑ नमः॑२ ।
ॐ ऐं ओं॒ नमः॑३ । ॐ ऐं औं॒ नमः॑४ ।
ॐ ऐं हा॑ं॒॒ नमः॑५ । ॐ ऐं श्रीं॒ नमः॑६ ।
ॐ ऐं श्रां॒ नमः॑७ । ॐ ऐं ओं॑ं॒॒ नमः॑८ ।

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥२॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥३॥
मोहन्ते मोहिताशचैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शारणं परमेश्वरीम् ॥४॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापिवर्गदा ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥७॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृणिं शंसितवत्तम् ।
निर्विष्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥८॥

*१ ब्रीं इति ग पुस्तके । *२ हीं इति ग पुस्तके । *३ प्लीं इति ग पुस्तके ।
१. ओं इति पाठान्तरम् ।

ॐ ऐं प्लीं* नमः१। ॐ ऐं सौं नमः१०।
 ॐ ऐं हीं नमः११। ॐ ऐं क्रीं नमः१२।
 ॐ ऐं ल्लूं नमः१३। ॐ ऐं क्लीं नमः१४।
 ॐ ऐं हीं नमः१५। ॐ ऐं प्लीं नमः१६।
 ॐ ऐं श्रीं नमः१७। ॐ ऐं ल्लीं नमः१८।

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
 संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥१॥

स च वैश्यस्तपस्तेषे देवीसूक्तं परं जपन् ।

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥२॥

अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्निर्पर्णैः ।

निराहारौ यताहारौ तम्भनस्कौ समाहितौ ॥३॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥४॥

एवं समाराधयतो स्त्रिभिर्वर्णैर्यतात्मनोः ॥५॥

परितुष्टा जगद्वात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥६॥

देव्युवाच ॥७॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।

मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥८॥

मार्कण्डेय उवाच ॥९॥

ततो वद्वे नृपो राज्यमविभृश्यन्यजन्मनि ।

अत्रैव च निर्जं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१०॥

* आं इति ग पुस्तके।

ॐ एं श्रूं नमः१९। ॐ एं ह्लीं नमः२०।
 ॐ एं त्रूं नमः२१। ॐ एं हूं नमः२२।
 ॐ एं प्री** नमः२३। ॐ एं ओं नमः२४।
 ॐ एं सूं*२ नमः२५। ॐ एं श्रीॄ नमः२६।
 ॐ एं ह्लौं६ नमः२७। ॐ एं यौं७ नमः२८।

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वदे निर्विण्णमानसः ।
 ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥१९॥

देव्युवाच ॥२०॥

स्वल्पैरहोभिन्नैपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ।
 हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥२२॥

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥२३॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाज्जितः ॥२४॥

तं प्रयच्छामि संसिद्धै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलिषितं वरम् ॥२७॥
 बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिषृता ।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥

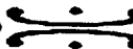
२. हसं इति ख पुस्तके । ३. हौं इति ख, हूं इति ग पुस्तके । ** हां इति ग पुस्तके ।
 ४. ऊं इति ख, प्रीं इति ग पुस्तके । ** ऊं इति ग पुस्तके । ५. आं इति ख, सूं इति ग पुस्तके ।
 ६. सौं इति ख पुस्तके । ७. आं इति ख, घों इति ग पुस्तके ।

३० ऐं ओऽ नमः२९।

‘ऐं हीं कलीं चामुण्डायै विच्चे’

*

इति त्रयोदशोऽध्यायः



सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥२९॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्थभः।

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥कलीं ३०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
सुरथवैश्ययो र्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥



आवश्यक—तंत्रदुर्गासप्तशती (या दुर्गासप्तशती) का पाठ पूर्ण कर लेने के बाद पूर्ववत् विनियोग, न्यास तथा ध्यान करके नवार्ण मंत्र का कम से कम १०८ बार जप करना चाहिए। जप के पश्चात् देवीसूक्त (अध्याय ५, मंत्र संख्या ९-८२ पर्यन्त) का पाठ करना चाहिए। दुर्गासप्तशती के पाठ के पश्चात् विनियोग आदि के बाद ९-८२ संख्या तक के श्लोकों का पाठ करना चाहिए।

c. आं लहीं इति क पुस्तके।

* हवन का बीजमंत्र उपलब्ध नहीं है। अतः यहाँ नवार्णमंत्र से हवन किया जा सकता है।

दुर्गासप्तशती के सिद्ध बीजमंत्र

तंत्र दुर्गासप्तशती के प्रत्येक बीजमंत्र और इसी प्रकार दुर्गासप्तशती के प्रत्येक श्लोकमंत्र में भगवती दुर्गा की विशिष्ट शक्तियां समाहित हैं। विधिपूर्वक साधना करने पर इन बीज वर्णों में निहित शक्तियां जाग्रत होकर साधक की कामना पूर्ण करती हैं। कौन से बीजमंत्र या श्लोक-मंत्र में कौन-कौन सी शक्ति निहित है, इस रहस्य का अन्वेषण साधक सदियों से करते रहे हैं और प्राप्त परिणामों की जानकारी संसार के कल्याण के लिये सिद्ध-साधक परम्परा से देते रहे हैं। ऐसे ही निश्चित फल देने वाले मंत्रों को 'सिद्ध-मंत्र' के नाम से जाना जाता है।

यह ज्ञातव्य है कि तंत्रदुर्गासप्तशती के बीजमंत्र अपने आप में अद्भुत शक्तियों के भंडार हैं। इन बीजमंत्रों में से कामना के अनुसार साधक कोई भी बीजमंत्र साधना के लिये चुन कर जप आदि कर सकते हैं। इसके अलावा यदि 'दुर्गासप्तशती' के श्लोक मंत्रों की साधना करनी है, तो जिस श्लोक मंत्र की साधना करनी है, उसके बीजमंत्र का सम्पुट देकर भी जप करने की परम्परा है। स्पष्टतः केवल बीजमंत्र, केवल श्लोकमंत्र तथा बीजमंत्र सम्पुटित श्लोकमंत्र के रूप में तीन प्रकार से जप और उनसे विधि के अनुसार हवन आदि करके साधना की जाती है।

साधना के समय दीपक की ज्योति को भगवती का प्रतीक मानकर प्रत्येक श्लोकमंत्र या बीजमंत्र के जप के पश्चात् ज्योति को प्रणाम

करते हुए निश्चित संख्या तक जप करना चाहिये ।

यहां तंत्रदुर्गासप्तशती के कुछ सिद्ध बीजमंत्रों और उनके श्लोकमंत्रों का सामान्य विधि के साथ सदियों से प्रचलित साधना का उल्लेख करना उपयोगी रहेगा—

दुर्गासप्तशती के प्रत्येक श्लोकमंत्र से पूर्व कामबीज क्लीं का संपुट देकर ४१ दिन तक प्रतिदिन तीन बार सम्पूर्ण सप्तशती का पाठ करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है । इसी कामबीज का सम्पुट देकर २१ दिन तक प्रतिदिन १२ बार पाठ करने से वशीकरण की सिद्धि होती है ।

सप्तशती के प्रत्येक श्लोक मंत्र के साथ श्रीं बीज का सम्पुट देकर ४९ दिन तक प्रतिदिन १२ बार पाठ करने से अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । वाग्बीज ऐं का सम्पुट देकर सप्तशती का 100 बार पाठ करने से विद्या की प्राप्ति होती है ।

श्रीसूक्त के मंत्र —

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारमार्द्धं ज्वलन्तीं तृप्तां तर्षयन्तीम् ।

पद्मे स्थितां पद्मवर्णा तामिहोपह्ये श्रियम् ॥

का संपुट देकर सप्तशती का पाठ करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।
दुर्गासप्तशती के प्रत्येक श्लोक के पूर्व —

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरुद्धा तं महासुरम् ।

पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥

का संपुट देकर पाठ करने से मारण की सिद्धि (शत्रुविनाश) होती है ।

सप्तशती के श्लोकमंत्र —

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

का प्रत्येक श्लोकमंत्र के साथ सम्पुट देकर पाठ करने से तुरन्त संमोहन होता है। इसी प्रकार –

रोगनशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् संकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणांत्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥

का सम्पुट देकर सप्तशती का पाठ करने से समस्त रोगों का विनाश होता है।

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥

श्लोकमंत्र का सम्पुट देकर सप्तशती का पाठ करने से वाणी की विकृति (तुलताना, हकलाना आदि) का नाश होता है तथा विद्या की प्राप्ति होती है।

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते ।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ।
संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ॥
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ।
तस्य वित्तर्द्धिविभवे धनदारादिसम्पदाम् ॥
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥

इस ११२ अक्षर वाले महामंत्र का जप करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी प्रकार –

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

का कामना की गुरुता के अनुसार लक्ष, दशसहस्र या एक सहस्र पाठ करने से कामनाओं की पूर्ति होती है। इनके अलावा सप्तशती के कुछ अन्य प्रचलित सिद्ध बीजमंत्र और श्लोकमंत्र निम्नानुसार हैं –

- (१) सामूहिक कल्याण के लिये — ॐ ऐं दो नमः
- (२) भय विनाश के लिये — ॐ ऐं प्रे नमः
- (३) विश्व रक्षा के लिये — ॐ ऐं या नमः
- (४) विश्व के अभ्युदय के लिये — ॐ ऐं म्ब नमः

१. देव्या यथा ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्चेष्टदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां,
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥४॥३॥
२. यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभयस्य मतिं करोतु ॥४॥४॥
३. या श्रीः स्वयं सुकृतिना भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥४॥५॥
४. विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेश्वरन्दा भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥१॥३॥

- | | | |
|-----|----------------------------|----------------------|
| (५) | विपत्तियों के नाश के लिये | — ॐ ऐं श्रीं नमः |
| (६) | विश्वके पाप—ताप विनाश हेतु | — ॐ ऐं कूं नमः |
| (७) | विपत्ति—नाशके लिये | — ॐ ऐं गलौं नमः |
| (८) | विपत्तिनाश एवं शुभ के लिये | — ॐ ऐं क्षम्लीं नमः |
| (९) | भयविनाश के लिये | |
| | | (क) — ॐ ऐं श्रूं नमः |
| | | (ख) — ॐ ऐं इं नमः |
| | | (ग) — ॐ ऐं जुं नमः |
-

५. देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं ।
त्वमीश्चरि देवि चराचरस्य ॥११३॥
६. देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते —
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥११३४॥
७. शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१११२॥
८. करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥५॥८॥
- ९.(क) सर्वस्वरूपे सर्वेषो सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥१११२४॥
- (ख) एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥१११२५॥
- (ग) ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥१११२६॥

(१०) रोग—नाश हेतु	— ॐ ऐं हौं नमः
(११) बाधा—शान्ति हेतु	— ॐ ऐं से नमः
(१२) दारिद्र्यदुःखादिनाश हेतु	— ॐ ऐं श्रीं नमः
(१३) रक्षा के लिये	— ॐ ऐं फ्रे नमः
(१४) कल्याण हेतु	— ॐ ऐं स्कलीं नमः
(१५) प्रसन्नता के लिये	— ॐ ऐं फां नमः

१०. रोगानशेषानपहंसि तुष्टा

रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।

त्वामाश्रितानां न विपत्रराणां

त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥११।२९।

११. सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।

एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥११।३९।

१२. दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः

स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।

दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या

सर्वोपकारकरणाय सदार्द्धचित्ता॥१४।१७।

१३. शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड़ेन चाम्बिके।

घटास्वनेन नः पाहि चापञ्चानिःस्वनेन च॥१४।२४।

१४. सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥११।१०।

१५. प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।

त्रैलोक्यवासिनामीडचे लोकानां वरदा भव॥११।३५।



COLLECTION OF VARIOUS
--> HINDUISM SCRIPTURES
--> HINDU COMICS
--> AYURVEDA
--> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
--> HINDUISM SCRIPTURES
--> HINDU COMICS
--> AYURVEDA
--> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

- (१६) उपद्रवों से बचने हेतु
- (१७) स्वर्ग और मुक्तिके लिये
- (१८) मोक्षकी प्राप्ति हेतु

— ॐ ऐं हौं नमः
— ॐ ऐं श्रू नमः
— ॐ ऐं प्रे नमः

१६. रक्षांसि यत्रोग्रविषाशच नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥११।३२।
१७. सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापिवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११।४।
१८. त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥११।५।

